1938

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

गीता सबके लिये है फिर बच्चे उससे वंचित क्यों? गीताप्रेसके संस्थापक, संरक्षक ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका बच्चोंको गीता याद (कण्ठस्थ) करानेकी प्रेरणा देते थे। इस दृष्टिसे यह पुस्तक बच्चे तथा अन्य लोग जो गीताके विषयमें जानकारी नहीं रखते हैं, उनके लिये विशेष उपयोगी है। पद्मपुराणमें गीताके प्रत्येक अध्यायका माहात्म्य कथाओंके माध्यमसे समझाया गया है; वही इस पुस्तकमें दिया जा रहा है, जिससे बच्चे तथा अन्य पाठक गीता याद करने तथा समझनेकी प्रेरणा ले सकें।

विनीत—

प्रकाशक

॥ श्रीहरि: ॥

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमद्भगवद्गीताके पहले अध्यायका माहात्म्य

श्रीपार्वतीजीने कहा—**भगवन्! आप सब तत्त्वोंके ज्ञाता हैं। आपकी कृपासे मुझे श्रीविष्णु-सम्बन्धी नाना प्रकारके धर्म सुननेको मिले, जो समस्त लोकका उद्धार करनेवाले हैं। देवेश! अब मैं गीताका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ, जिसका श्रवण करनेसे श्रीहरिमें भक्ति बढ़ती है।**

श्रीमहादेवजी बोले—**जिनका श्रीविग्रह अलसीके फूलकी भाँति श्याम-वर्णका है, पक्षिराज गरुड़ ही जिनके वाहन हैं, जो अपनी महिमासे कभी च्युत नहीं होते तथा शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं, उन भगवान् महाविष्णुकी हम उपासना करते हैं। एक समयकी बात है, मुर दैत्यके नाशक भगवान् विष्णु शेषनागके रमणीय आसनपर सुखपूर्वक विराजमान थे। उस समय समस्त लोकोंको आनन्द देनेवाली भगवती लक्ष्मीने आदरपूर्वक प्रश्न किया।**

श्रीलक्ष्मीजीने पूछा—**भगवन्! आप सम्पूर्ण जगत्का पालन करते हुए भी अपने ऐश्वर्यके प्रति उदासीन-से होकर जो इस क्षीरसागरमें नींद ले रहे हैं, इसका क्या कारण है?**

श्रीभगवान् बोले—**सुमुखि! मैं नींद नहीं लेता हूँ, अपितु तत्त्वका अनुसरण करनेवाली अन्तर्दृष्टिके द्वारा अपने ही माहेश्वर तेजका साक्षात्कार कर रहा हूँ। देवि! यह वही तेज है, जिसका योगी पुरुष कुशाग्र-बुद्धिके द्वारा अपने अन्तःकरणमें दर्शन करते हैं तथा जिसे मीमांसक विद्वान् वेदोंका सार-तत्त्व निश्चित करते हैं। वह माहेश्वर तेज एक, अजर, प्रकाशस्वरूप, आत्मरूप रोग-शोकसे रहित, अखण्ड आनन्दका पुंज, निष्पन्द (निरीह) तथा द्वैतरहित है। इस जगत्का जीवन उसीके अधीन है। मैं उसीका अनुभव करता हूँ। देवेश्वरि! यही कारण है कि मैं तुम्हें नींद लेता-सा प्रतीत हो रहा हूँ।**

श्रीलक्ष्मीजीने कहा—**हृषीकेश! आप ही योगी पुरुषोंके ध्येय हैं। आपके अतिरिक्त भी कोई ध्यान करनेयोग्य तत्त्व है, यह जानकर मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। इस चराचर जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाले स्वयं आप ही हैं। आप सर्वसमर्थ हैं। इस प्रकारकी स्थितिमें होकर भी यदि आप उस परम तत्त्वसे भिन्न हैं तो मुझे उसका बोध कराइये।**

श्रीभगवान् बोले—**प्रिये! आत्माका स्वरूप द्वैत और अद्वैतसे पृथक्, भाव और अभावसे मुक्त तथा आदि और अन्तसे रहित है। शुद्ध ज्ञानके प्रकाशसे उपलब्ध होनेवाला तथा परमानन्दस्वरूप होनेके कारण एकमात्र सुन्दर है। वही मेरा ईश्वरीय रूप है। आत्माका एकत्व ही सबके द्वारा जाननेयोग्य है। गीताशास्त्रमें इसीका प्रतिपादन हुआ है।**

अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुके ये वचन सुनकर लक्ष्मी देवीने शंका उपस्थित करते हुए कहा—भगवन्! यदि आपका स्वरूप स्वयं परमानन्दमय और मन-वाणीकी पहुँचके बाहर है तो गीता कैसे उसका बोध कराती है? मेरे इस संदेहका आप निवारण कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—**सुन्दरि! सुनो, मैं गीतामें अपनी स्थितिका वर्णन करता हूँ। क्रमशः पाँच अध्यायोंको तुम पाँच मुख जानो, दस अध्यायोंको दस भुजाएँ समझो तथा एक अध्यायको उदर और दो अध्यायोंको दोनों चरणकमल जानो। इस प्रकार यह अठारह अध्यायोंकी वाङ्मयी ईश्वरीय मूर्ति ही समझनी चाहिये।* यह ज्ञानमात्रसे ही महान् पातकोंका नाश करनेवाली है। जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष गीताके एक या आधे अध्यायका अथवा एक, आधे या चौथाई श्लोकका भी प्रतिदिन अभ्यास करता है, वह सुशर्माके समान मुक्त हो जाता है।**

श्रीलक्ष्मीजीने पूछा—**देव! सुशर्मा कौन था? किस जातिका था और किस कारणसे उसकी मुक्ति हुई?**

श्रीभगवान् बोले—**प्रिये! सुशर्मा बड़ी खोटी बुद्धिका मनुष्य था। पापियोंका तो वह शिरोमणि ही था। उसका जन्म वैदिक ज्ञानसे शून्य एवं क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले ब्राह्मणोंके कुलमें हुआ था। वह न ध्यान करता था, न जप; न होम करता था, न अतिथियोंका सत्कार। वह लम्पट होनेके कारण सदा विषयोंके सेवनमें ही आसक्त रहता था। हल जोतता और पत्ते बेचकर जीविका चलाता था। उसे मदिरा पीनेका व्यसन था तथा वह मांस भी खाया करता था। इस प्रकार उसने अपने जीवनका दीर्घकाल व्यतीत कर दिया। एक दिन मूढ़ बुद्धि सुशर्मा पत्ते लानेके लिये किसी ऋषिकी वाटिकामें घूम रहा था। इसी बीचमें कालरूपधारी काले साँपने उसे डस लिया। सुशर्माकी मृत्यु हो गयी। तदनन्तर वह अनेक नरकोंमें जा वहाँकी यातनाएँ भोगकर मर्त्यलोकमें लौट आया और वहाँ बोझ ढोनेवाला बैल हुआ। उस**

---

* शृणु सुश्रोणि वक्ष्यामि गीतासु स्थितिमात्मनः। वक्त्राणि पंच जानीहि पंचाध्यायाननुक्रमात्॥
दशाध्यायान् भुजांश्चैकमुदरं द्वौ पदाम्बुजे। एवमष्टादशाध्यायी वाङ्मयी मूर्तिरैश्वरी॥
(पद्म०, उत्तर० १७१। २७-२८)

समय किसी पंगुने अपने जीवनको आरामसे व्यतीत करनेके लिये उसे खरीद लिया। बैलने अपनी पीठपर पंगुका भार ढोते हुए बड़े कष्टसे सात-आठ वर्ष बिताये। एक दिन पंगुने किसी ऊँचे स्थानपर बहुत देरतक बड़ी तेजीके साथ उस बैलको घुमाया। इससे वह थककर बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिरा और मूर्च्छित हो गया। उस समय वहाँ कुतूहलवश आकृष्ट हो बहुत-से लोग एकत्रित हो गये। उस जनसमुदायमेंसे किसी पुण्यात्मा व्यक्तिने उस बैलका कल्याण करनेके लिये उसे अपना पुण्य दान किया। तत्पश्चात् कुछ दूसरे लोगोंने भी अपने-अपने पुण्योंको याद करके उन्हें उसके लिये दान किया। उस भीड़में एक वेश्या भी खड़ी थी। उसे अपने पुण्यका पता नहीं था तो भी उसने लोगोंकी देखा-देखी उस बैलके लिये कुछ त्याग किया।

तदनन्तर यमराजके दूत उस मरे हुए प्राणीको पहले यमपुरीमें ले गये। वहाँ यह विचारकर कि यह वेश्याके दिये हुए पुण्यसे पुण्यवान् हो गया है, उसे छोड़ दिया गया। फिर वह भूलोकमें आकर उत्तम कुल और शीलवाले ब्राह्मणोंके घरमें उत्पन्न हुआ। उस समय भी उसे अपने पूर्व-जन्मकी बातोंका स्मरण बना रहा। बहुत दिनोंके बाद अपने अज्ञानको दूर करनेवाले कल्याण-तत्त्वका जिज्ञासु होकर वह उस वेश्याके पास गया और उसके दानकी बात बतलाते हुए उसने पूछा— 'तुमने कौन-सा पुण्यदान किया था?' वेश्याने उत्तर दिया— 'वह पिंजरेमें बैठा हुआ तोता प्रतिदिन कुछ पढ़ता है। उससे मेरा अन्तःकरण पवित्र हो गया है। उसीका पुण्य मैंने तुम्हारे लिये दान किया था।' इसके बाद उन दोनोंने तोतेसे पूछा। तब उस तोतेने अपने पूर्वजन्मका स्मरण करके प्राचीन इतिहास कहना आरम्भ किया।

शुक बोला—**पूर्वजन्ममें मैं विद्वान् होकर भी विद्वत्ताके**

अभिमानसे मोहित रहता था। मेरा राग-द्वेष इतना बढ़ गया था कि मैं गुणवान् विद्वानोंके प्रति भी ईर्ष्याभाव रखने लगा। फिर समयानुसार मेरी मृत्यु हो गयी और मैं अनेकों घृणित लोकोंमें भटकता फिरा। उसके बाद इस लोकमें आया। सद्‌गुरुकी अत्यन्त निन्दा करनेके कारण तोतेके कुलमें मेरा जन्म हुआ। पापी होनेके कारण छोटी अवस्थामें ही मेरा माता-पितासे वियोग हो गया। एक दिन मैं ग्रीष्म-ऋतुमें तपे हुए मार्गपर पड़ा था। वहाँसे कुछ श्रेष्ठ मुनि मुझे उठा लाये और महात्माओंके आश्रयमें आश्रमके भीतर एक पिंजरेमें उन्होंने मुझे डाल दिया। वहीं मुझे पढ़ाया गया। ऋषियोंके बालक बड़े आदरके साथ गीताके प्रथम अध्यायकी आवृत्ति करते थे। उन्हींसे सुनकर मैं भी बारंबार पाठ करने लगा। इसी बीचमें एक चोरी करनेवाले बहेलियेने मुझे वहाँसे चुरा लिया। तत्पश्चात् इस देवीने मुझे खरीद लिया। यही मेरा वृत्तान्त है, जिसे मैंने आपलोगोंसे बता दिया। पूर्वकालमें मैंने इस प्रथम अध्यायका अभ्यास किया था, जिससे मैंने अपने पापको दूर किया है। फिर उसीसे इस वेश्याका भी अन्तःकरण शुद्ध हुआ है और उसीके पुण्यसे ये द्विजश्रेष्ठ सुशर्मा भी पापमुक्त हुए हैं।

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप और गीताके प्रथम अध्यायके माहात्म्यकी प्रशंसा करके वे तीनों निरन्तर अपने-अपने घरपर गीताका अभ्यास करने लगे। फिर ज्ञान प्राप्त करके वे मुक्त हो गये। इसलिये जो गीताके प्रथम अध्यायको पढ़ता, सुनता तथा अभ्यास करता है, उसे इस भवसागरको पार करनेमें कोई कठिनाई नहीं होती।

श्रीमद्भगवद्गीताके दूसरे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—**लक्ष्मी! प्रथम अध्यायके माहात्म्यका उत्तम उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया। अब अन्य अध्यायोंके माहात्म्य श्रवण करो। दक्षिण दिशामें वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके पुरन्दरपुर नामक नगरमें श्रीमान् देवशर्मा नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। वे अतिथियोंके पूजक, स्वाध्यायशील, वेद-शास्त्रोंके विशेषज्ञ, यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले और तपस्वियोंके सदा ही प्रिय थे। उन्होंने उत्तम द्रव्योंके द्वारा अग्निमें हवन करके दीर्घकालतक देवताओंको तृप्त किया, किंतु उन धर्मात्मा ब्राह्मणको कभी सदा रहनेवाली शान्ति न मिली। वे परम कल्याणमय तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रतिदिन प्रचुर सामग्रियोंके द्वारा सत्य-संकल्पवाले तपस्वियोंकी सेवा करने लगे। इस प्रकार शुभ आचरण करते हुए उन्हें बहुत समय बीत गया। तदनन्तर एक दिन पृथ्वीपर उनके समक्ष एक त्यागी महात्मा प्रकट हुए। वे पूर्ण अनुभवी, आकाङ्क्षारहित, नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखनेवाले तथा शान्तचित्त थे। निरन्तर परमात्माके चिन्तनमें संलग्न हो वे सदा आनन्दविभोर रहते थे। देवशर्माने उन नित्यसन्तुष्ट तपस्वीको शुद्धभावसे प्रणाम किया और पूछा—'महात्मन्! मुझे शान्तिमयी स्थिति कैसे प्राप्त होगी? तब उन आत्मज्ञानी संतने देवशर्माको सौपुर ग्रामके निवासी मित्रवान्का,**

जो बकरियोंका चरवाहा था, परिचय दिया और कहा, 'वही तुम्हें उपदेश देगा।'

यह सुनकर देवशर्माने महात्माके चरणोंकी वन्दना की और समृद्धिशाली सौपुर ग्राममें पहुँचकर उसके उत्तरभागमें एक विशाल वन देखा। उसी वनमें नदीके किनारे एक शिलापर मित्रवान् बैठा था। उसके नेत्र आनन्दातिरेकसे निश्चल हो रहे थे—वह अपलक दृष्टिसे देख रहा था। वह स्थान आपसका स्वाभाविक वैर छोड़कर एकत्रित हुए परस्परविरोधी जन्तुओंसे घिरा था। वहाँ उद्यानमें मन्द-मन्द वायु चल रही थी। मृगोंके झुंड शान्तभावसे बैठे थे और मित्रवान् दयासे भरी हुई आनन्दमयी मनोहारिणी दृष्टिसे पृथ्वीपर मानो अमृत छिड़क रहा था। इस रूपमें उसे देखकर देवशर्माका मन प्रसन्न हो गया। वे उत्सुक होकर बड़ी विनयके साथ मित्रवान्के पास गये। मित्रवान्ने भी अपने मस्तकको किंचित् नवाकर देवशर्माका सत्कार किया। तदनन्तर विद्वान् देवशर्मा अनन्य-चित्तसे मित्रवान्के समीप गये और जब उसके ध्यानका समय समाप्त हो गया, उस समय उन्होंने अपने मनकी बात पूछी—'महाभाग! मैं आत्माका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरे इस मनोरथकी पूर्तिके लिये मुझे किसी ऐसे उपायका उपदेश कीजिये, जिसके द्वारा सिद्धि प्राप्त हो चुकी हो।'

देवशर्माकी बात सुनकर मित्रवान्ने एक क्षणतक कुछ विचार किया। उसके बाद इस प्रकार कहा—'विद्वन्! एक समयकी बात है, मैं वनके भीतर बकरियोंकी रक्षा कर रहा था। इतनेमें ही एक भयंकर व्याघ्रपर मेरी दृष्टि पड़ी, जो मानो सबको ग्रस लेना चाहता था। मैं मृत्युसे डरता था, इसलिये व्याघ्रको आते देख बकरियोंके झुंडको आगे करके वहाँसे भाग चला, किंतु एक बकरी तुरंत ही सारा भय छोड़कर नदीके किनारे उस

बाघके पास बेरोक-टोक चली गयी। फिर तो व्याघ्र भी द्वेष छोड़कर चुपचाप खड़ा हो गया। उसे इस अवस्थामें देखकर बकरी बोली—'व्याघ्र! तुम्हें तो अभीष्ट भोजन प्राप्त हुआ है। मेरे शरीरसे मांस निकालकर प्रेमपूर्वक खाओ न। तुम इतनी देरसे खड़े क्यों हो? तुम्हारे मनमें मुझे खानेका विचार क्यों नहीं हो रहा है?'

व्याघ्र बोला—बकरी! इस स्थानपर आते ही मेरे मनसे द्वेषका भाव निकल गया। भूख-प्यास भी मिट गयी। इसलिये पास आनेपर भी अब मैं तुझे खाना नहीं चाहता।

व्याघ्रके यों कहनेपर बकरी बोली—'न जाने मैं कैसे निर्भय हो गयी हूँ। इसमें क्या कारण हो सकता है? यदि तुम जानते हो तो बताओ।' यह सुनकर व्याघ्रने कहा—'मैं भी नहीं जानता। चलो, सामने खड़े हुए इन महापुरुषसे पूछें।' ऐसा निश्चय करके वे दोनों वहाँसे चल दिये। उन दोनोंके स्वभावमें यह विचित्र परिवर्तन देखकर मैं बहुत विस्मयमें पड़ा था। इतनेमें ही उन्होंने मुझसे ही आकर प्रश्न किया। वहाँ वृक्षकी शाखापर एक वानरराज था। उन दोनोंके साथ मैंने भी वानरराजसे पूछा। विप्रवर! मेरे पूछनेपर वानरराजने आदरपूर्वक कहा—'अजापाल! सुनो, इस विषयमें मैं तुम्हें प्राचीन वृत्तान्त सुनाता हूँ। यह सामने वनके भीतर जो बहुत बड़ा मन्दिर है, उसकी ओर देखो। इसमें ब्रह्माजीका स्थापित किया हुआ एक शिवलिंग है। पूर्वकालमें यहाँ सुकर्मा नामक एक बुद्धिमान् महात्मा रहते थे, जो तपस्यामें संलग्न होकर इस मन्दिरमें उपासना करते थे। वे वनमेंसे फूलोंका संग्रह कर लाते और नदीके जलसे पूजनीय भगवान् शंकरको स्नान कराकर उन्हींसे उनकी पूजा किया करते थे। इस प्रकार आराधनाका कार्य करते हुए सुकर्मा यहाँ निवास करते थे। बहुत समयके बाद उनके समीप किसी अतिथिका आगमन

हुआ। सुकर्माने भोजनके लिये फल लाकर अतिथिको अर्पण किया और कहा—'विद्वन्! मैं केवल तत्त्वज्ञानकी इच्छासे भगवान् शंकरकी आराधना करता हूँ। आज इस आराधनाका फल परिपक्व होकर मुझे मिल गया; क्योंकि इस समय आप-जैसे महापुरुषने मुझपर अनुग्रह किया है।'

सुकर्माके ये मधुर वचन सुनकर तपस्याके धनी महात्मा अतिथिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक शिलाखण्डपर गीताका दूसरा अध्याय लिख दिया और ब्राह्मणको उसके पाठ एवं अभ्यासके लिये आज्ञा देते हुए कहा—'ब्रह्मन्! इससे तुम्हारा आत्मज्ञान-सम्बन्धी मनोरथ अपने-आप सफल हो जायगा ।' यों कहकर वे बुद्धिमान् तपस्वी सुकर्माके सामने ही उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। सुकर्मा विस्मित होकर उनके आदेशके अनुसार निरन्तर गीताके द्वितीय अध्यायका अभ्यास करने लगे। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् अन्तःकरण शुद्ध होकर उन्हें आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुई। फिर वे जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँका तपोवन शान्त हो गया। उनमें शीत-उष्ण और राग-द्वेष आदिकी बाधाएँ दूर हो गयीं। इतना ही नहीं, उन स्थानोंमें भूख-प्यासका कष्ट भी जाता रहा तथा भयका सर्वथा अभाव हो गया। यह सब द्वितीय अध्यायका जप करनेवाले सुकर्मा ब्राह्मणकी तपस्याका ही प्रभाव समझो।

मित्रवान् कहता है—**वानरराजके यों कहनेपर मैं प्रसन्नतापूर्वक बकरी और बाघके साथ उस मन्दिरकी ओर गया। वहाँ जाकर शिलाखण्डपर लिखे हुए गीताके द्वितीय अध्यायको मैंने देखा और पढ़ा। उसीकी आवृत्ति करनेसे मैंने तपस्याका पार पा लिया है। अतः भद्रपुरुष! तुम भी सदा द्वितीय अध्यायकी ही आवृत्ति किया करो। ऐसा करनेपर मुक्ति तुमसे दूर नहीं रहेगी।**

श्रीभगवान् कहते हैं—**प्रिये! मित्रवान्के इस प्रकार आदेश**

देनेपर देवशर्माने उसका पूजन किया और उसे प्रणाम करके पुरन्दरपुरकी राह ली। वहाँ किसी देवालयमें पूर्वोक्त आत्मज्ञानी महात्माको पाकर उन्होंने यह सारा वृत्तान्त निवेदन किया और सबसे पहले उन्हींसे द्वितीय अध्यायको पढ़ा। उनसे उपदेश पाकर शुद्ध अन्तःकरणवाले देवशर्मा प्रतिदिन बड़ी श्रद्धाके साथ द्वितीय अध्यायका पाठ करने लगे। तबसे उन्होंने अनवद्य (प्रशंसाके योग्य) परमपदको प्राप्त कर लिया। लक्ष्मी! यह द्वितीय अध्यायका उपाख्यान कहा गया।

श्रीमद्भगवद्गीताके तीसरे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—प्रिये! जनस्थानमें एक जड नामक ब्राह्मण था, जो कौशिकवंशमें उत्पन्न हुआ था। उसने अपना जातीय धर्म छोड़कर बनियेकी वृत्तिमें मन लगाया। उसे परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार करनेका व्यसन पड़ गया था। वह सदा जुआ खेलता, शराब पीता और शिकार खेलकर जीवोंकी हिंसा किया करता था। इसी प्रकार उसका समय बीतता था। धन नष्ट हो जानेपर वह व्यापारके लिये बहुत दूर उत्तर दिशामें चला गया। वहाँसे धन कमाकर घरकी ओर लौटा। बहुत दूरतकका रास्ता उसने तै कर लिया था। एक दिन सूर्यास्त हो जानेपर जब दसों दिशाओंमें अन्धकार फैल गया, तब एक वृक्षके नीचे उसे लुटेरोंने धर दबाया और शीघ्र ही उसके प्राण ले लिये। उसके धर्मका लोप हो गया था, इसलिये वह बड़ा भयानक प्रेत हुआ।

उसका पुत्र बड़ा धर्मात्मा

और वेदोंका विद्वान् था। उसने अबतक पिताके लौट आनेकी राह देखी। जब वे नहीं आये, तब उनका पता लगानेके लिये वह स्वयं भी घर छोड़कर चल दिया। वह प्रतिदिन खोज करता, मगर राहगीरोंसे पूछनेपर भी उसे उनका कुछ समाचार नहीं मिलता था। तदनन्तर एक दिन एक मनुष्यसे उसकी भेंट हुई, जो उसके पिताका सहायक था, उससे सारा हाल जानकर उसने पिताकी मृत्युपर बहुत शोक किया। वह बड़ा बुद्धिमान् था। बहुत कुछ सोच-विचारकर पिताका पारलौकिक कर्म करनेकी इच्छासे आवश्यक सामग्री साथ ले उसने काशी जानेका विचार किया। मार्गमें सात-आठ मुकाम डालकर वह नवें दिन उसी वृक्षके नीचे पहुँचा, जहाँ इसके पिता मारे गये थे। उस स्थानपर उसने संध्योपासना की और गीताके तीसरे अध्यायका पाठ किया। इसी समय आकाशमें बड़ी भयानक आवाज हुई। उसने अपने पिताको भयंकर आकारमें देखा; फिर तुरंत ही अपने सामने आकाशमें उसे एक सुन्दर विमान दिखायी दिया, जो महान् तेजसे व्याप्त था। उसमें अनेकों क्षुद्र घंटिकाएँ लगी थीं। उसके तेजसे समस्त दिशाएँ आलोकित हो रही थीं। यह दृश्य देखकर उसके चित्तकी व्यग्रता दूर हो गयी। उसने विमानपर अपने पिताको दिव्यरूप धारण किये विराजमान देखा। उनके शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा था और मुनिजन उनकी स्तुति कर रहे थे। उन्हें देखते ही पुत्रने प्रणाम किया, तब पिताने भी उसे आशीर्वाद दिया।

तत्पश्चात् उसने पितासे यह सारा वृत्तान्त पूछा। उसके उत्तरमें पिताने सब बातें बताकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'बेटा! दैववश मेरे निकट गीताके तृतीय अध्यायका पाठ करके तुमने इस शरीरके द्वारा किये हुए दुस्त्यज कर्मबन्धनसे मुझे छुड़ा दिया। अतः अब घर लौट जाओ; क्योंकि जिसके

लिये तुम काशी जा रहे थे, वह प्रयोजन इस समय तृतीय अध्यायके पाठसे ही सिद्ध हो गया है।' पिताके यों कहनेपर पुत्रने पूछा—'तात! मेरे हितका उपदेश दीजिये तथा और कोई कार्य जो मेरे लिये करनेयोग्य हो बतलाइये।' तब पिताने उससे कहा—'अनघ! तुम्हें यही कार्य फिर करना है। मैंने जो कर्म किया है, वही मेरे भाईने भी किया था। इससे वे घोर नरकमें पड़े हैं। उनका भी तुम्हें उद्धार करना चाहिये तथा मेरे कुलके और भी जितने लोग नरकमें पड़े हैं, उन सबका भी तुम्हारे द्वारा उद्धार हो जाना चाहिये; यही मेरा मनोरथ है। बेटा! जिस साधनके द्वारा तुमने मुझे संकटसे छुड़ाया है, उसीका अनुष्ठान औरोंके लिये भी करना उचित है। उसका अनुष्ठान करके उससे होनेवाला पुण्य उन नारकी जीवोंको संकल्प करके दे दो। इससे वे समस्त पूर्वज मेरी ही तरह यातनासे मुक्त हो स्वल्पकालमें ही श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त हो जायँगे।'

पिताका यह संदेश सुनकर पुत्रने कहा—'तात! यदि ऐसी बात है और आपकी भी ऐसी ही रुचि है तो मैं समस्त नारकी जीवोंका नरकसे उद्धार कर दूँगा।' यह सुनकर उसके पिता बोले—'बेटा! एवमस्तु, तुम्हारा कल्याण हो; मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य सम्पन्न हो गया।' इस प्रकार पुत्रको आश्वासन देकर उसके पिता भगवान् विष्णुके परमधामको चले गये। तत्पश्चात् वह भी लौटकर जनस्थानमें आया और परम सुन्दर भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरमें उनके समक्ष बैठकर पिताके आदेशानुसार गीताके तीसरे अध्यायका पाठ करने लगा। उसने नारकी जीवोंका उद्धार करनेकी इच्छासे गीतापाठजनित सारा पुण्य संकल्प करके दे दिया।

इसी बीचमें भगवान् विष्णुके दूत यातना भोगनेवाले नारकी जीवोंको छुड़ानेके लिये यमराजके पास गये। यमराजने

नाना प्रकारके सत्कारोंसे उनका पूजन किया और कुशल पूछी। वे बोले—'धर्मराज ! हमलोगोंके लिये सब ओर आनन्द-ही-आनन्द है।' इस प्रकार सत्कार करके पितृलोकके सम्राट् परम बुद्धिमान् यमने विष्णुदूतोंसे यमलोकमें आनेका कारण पूछा।

तब विष्णुदूतोंने कहा—**यमराज! शेषशय्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णुने हमलोगोंको आपके पास कुछ संदेश देनेके लिये भेजा है। भगवान् हमलोगोंके मुखसे आपकी कुशल पूछते हैं और यह आज्ञा देते हैं कि 'आप नरकमें पड़े हुए समस्त प्राणियोंको छोड़ दें।'**

अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुका यह आदेश सुनकर यमने मस्तक झुकाकर उसे स्वीकार किया और मन-ही-मन कुछ सोचा। तत्पश्चात् मदोन्मत्त नारकी जीवोंको नरकसे मुक्त देखकर उनके साथ ही वे भगवान् विष्णुके वास-स्थानको चले। यमराज श्रेष्ठ विमानके द्वारा जहाँ क्षीरसागर है, वहाँ जा पहुँचे। उसके भीतर कोटि-कोटि सूर्योंके समान कान्तिमान् नील कमल-दलके समान श्यामसुन्दर लोकनाथ जगद्गुरु श्रीहरिका उन्होंने दर्शन किया। भगवान्‌का तेज उनकी शय्या बने हुए शेषनागके फणोंकी मणियोंके प्रकाशसे दुगुना हो रहा था। वे आनन्द-युक्त दिखायी दे रहे थे। उनका हृदय प्रसन्नतासे परिपूर्ण था। भगवती लक्ष्मी अपनी सरल चितवनसे प्रेमपूर्वक उन्हें बार-बार निहार रही थीं। चारों ओर योगीजन भगवान्‌की सेवामें खड़े थे। उन योगियोंकी आँखोंके तारे ध्यानस्थ होनेके कारण निश्चल प्रतीत होते थे। देवराज इन्द्र अपने विरोधियोंको परास्त करनेके उद्देश्यसे भगवान्‌की स्तुति कर रहे थे। ब्रह्माजीके मुखसे निकले हुए वेदान्तवाक्य मूर्तिमान् होकर भगवान्‌के गुणोंका गान कर रहे थे। भगवान् पूर्णतः संतुष्ट होनेके साथ ही समस्त योनियोंकी ओरसे उदासीन प्रतीत होते थे। जीवोंमेंसे जिन्होंने योग-साधनके

द्वारा अधिक पुण्य संचय किया था, उन सबको एक ही साथ वे कृपादृष्टिसे निहार रहे थे। भगवान् अपने स्वरूपभूत अखिल चराचर जगत्को आनन्दपूर्ण दृष्टिसे आमोदित कर रहे थे। शेषनागकी प्रभासे उद्भासित एवं सर्वत्र व्यापक दिव्य विग्रह धारण किये नील कमलके सदृश श्यामवर्णवाले श्रीहरि ऐसे जान पड़ते थे, मानो चाँदनीसे घिरा हुआ आकाश सुशोभित हो रहा हो। इस प्रकार भगवान्की झाँकी करके यमराज अपनी विशाल बुद्धिके द्वारा उनकी स्तुति करने लगे।

यमराज बोले—**सम्पूर्ण जगत्का निर्माण करनेवाले परमेश्वर! आपका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल है। आपके मुखसे ही वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ है। आप ही विश्वस्वरूप और इसके विधायक ब्रह्मा हैं। आपको नमस्कार है। अपने बल और वेगके कारण जो अत्यन्त दुर्धर्ष प्रतीत होते हैं, ऐसे दानवेन्द्रोंका अभिमान चूर्ण करनेवाले भगवान् विष्णुको नमस्कार है। पालनके समय सत्त्वमय शरीर धारण करनेवाले, विश्वके आधारभूत, सर्वव्यापी श्रीहरिको नमस्कार है। समस्त देहधारियोंकी पातक-राशिको दूर करनेवाले परमात्माको प्रणाम है। जिनके ललाटवर्ती नेत्रके तनिक-सा खुलनेपर भी आगकी लपटें निकलने लगती हैं, उन रुद्ररूपधारी आप परमेश्वरको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण विश्वके गुरु, आत्मा और महेश्वर हैं, अतः समस्त वैष्णवजनोंको संकटसे मुक्त करके उनपर अनुग्रह करते हैं। आप मायासे विस्तारको प्राप्त हुए अखिल विश्वमें व्याप्त होकर भी कभी माया अथवा उससे उत्पन्न होनेवाले गुणोंसे मोहित नहीं होते। माया तथा मायाजनित गुणोंके बीचमें स्थित होनेपर भी आपपर उनमेंसे किसीका प्रभाव नहीं पड़ता। आपकी महिमाका अन्त नहीं है; क्योंकि आप असीम हैं। फिर आप वाणीके विषय कैसे हो सकते हैं। अतः मेरा मौन रहना ही उचित है।**

इस प्रकार स्तुति करके यमराजने हाथ जोड़कर कहा—'जगद्‌गुरो! आपके आदेशसे इन जीवोंको गुणरहित होनेपर भी मैंने छोड़ दिया है। अब मेरे योग्य और जो कार्य हो, उसे बताइये।' उनके यों कहनेपर भगवान् मधुसूदन मेघके समान गम्भीर वाणीद्वारा मानो अमृतरससे सींचते हुए बोले—'धर्मराज! तुम सबके प्रति समानभाव रखते हुए लोकोंका पापसे उद्धार कर रहे हो। तुमपर देहधारियोंका भार रखकर मैं निश्चिन्त हूँ। अतः तुम अपना काम करो और अपने लोकको लौट जाओ।'

यों कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। यमराज भी अपनी पुरीको लौट आये। तब वह ब्राह्मण अपनी जातिके और समस्त नारकी जीवोंका नरकसे उद्धार करके स्वयं भी श्रेष्ठ विमानद्वारा श्रीविष्णुधामको चला गया।

श्रीमद्भगवद्गीताके चौथे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—**प्रिये! अब मैं चौथे अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ। सुनो, भागीरथीके तटपर वाराणसी (बनारस) नामकी एक पुरी है। वहाँ विश्वनाथजीके मन्दिरमें भरत नामके एक योगनिष्ठ महात्मा रहते थे, जो प्रतिदिन आत्मचिन्तनमें तत्पर हो आदरपूर्वक गीताके चतुर्थ अध्यायका पाठ किया करते थे। उसके अभ्याससे उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया था। वे शीत उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे कभी व्यथित नहीं होते थे। एक समयकी बात है, वे तपोधन नगरकी सीमामें स्थित देवताओंका**

दर्शन करनेकी इच्छासे भ्रमण करते हुए नगरसे बाहर निकल गये। वहाँ बेरके दो वृक्ष थे। उन्हींकी जड़में वे विश्राम करने लगे। एक वृक्षकी जड़में उन्होंने अपना मस्तक रखा था और दूसरे वृक्षके मूलमें उनका एक पैर टिका हुआ था। थोड़ी देर बाद जब वे तपस्वी चले गये तब बेरके वे दोनों वृक्ष पाँच ही छः दिनोंके भीतर सूख गये। उनमें पत्ते और डालियाँ भी नहीं रह गयीं। तत्पश्चात् वे दोनों वृक्ष कहीं ब्राह्मणोंके पवित्र गृहमें दो कन्याओंके रूपमें उत्पन्न हुए।

वे दोनों कन्याएँ जब बढ़कर सात वर्षकी हो गयीं, तब एक दिन उन्होंने दूर देशोंसे घूमकर आते हुए भरतमुनिको देखा। उन्हें देखते ही वे दोनों उनके चरणोंमें पड़ गयीं और मीठी वाणीमें बोलीं—'मुने! आपकी ही कृपासे हम दोनोंका उद्धार हुआ है। हमने बेरकी योनि त्यागकर मानव-शरीर प्राप्त किया है।' उनके इस प्रकार कहनेपर मुनिको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—'पुत्रियों! मैंने कब और किस साधनसे तुम्हें मुक्त किया था? साथ ही यह भी बताओ कि तुम्हारे बेरके वृक्ष होनेमें क्या कारण था? क्योंकि इस विषयमें मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है।'

तब वे कन्याएँ पहले उन्हें अपने बेर हो जानेका कारण बतलाती हुई बोलीं—''मुने! गोदावरी नदीके तटपर छिन्नपाप नामका एक उत्तम तीर्थ है, जो मनुष्योंको पुण्य प्रदान करनेवाला है। वह पावनताकी चरम सीमापर पहुँचा हुआ है। उस तीर्थमें सत्यतपा नामक एक तपस्वी बड़ी कठोर तपस्या कर रहे थे। वे ग्रीष्म-ऋतुमें प्रज्वलित अग्नियोंके बीचमें बैठते थे, वर्षाकालमें जलकी धाराओंसे उनके मस्तकके बाल सदा भीगे ही रहते थे तथा जाड़ेके समय जलमें निवास करनेके कारण उनके शरीरमें हमेशा रोंगटे खड़े रहते थे। वे बाहर-भीतरसे सदा शुद्ध रहते,

समयपर तपस्या करते तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए परम शान्ति प्राप्त करके आत्मामें ही रमण करते थे। वे अपनी विद्वत्ताके द्वारा जैसा व्याख्यान करते थे, उसे सुननेके लिये साक्षात् ब्रह्माजी भी प्रतिदिन उनके पास उपस्थित होते और प्रश्न करते थे। ब्रह्माजीके साथ उनका संकोच नहीं रह गया था, अतः उनके आनेपर भी वे सदा तपस्यामें मग्न रहते थे। परमात्माके ध्यानमें निरन्तर संलग्न रहनेके कारण उनकी तपस्या सदा बढ़ती रहती थी। सत्यतपाको जीवन्मुक्तके समान मानकर इन्द्रको अपने समृद्धिशाली पदके सम्बन्धमें कुछ भय हुआ, तब उन्होंने उनकी तपस्यामें सैकड़ों विघ्न डालने आरम्भ किये। अप्सराओंके समुदायसे हम दोनोंको बुलाकर इन्द्रने इस प्रकार आदेश दिया—'तुम दोनों उस तपस्वीकी तपस्यामें विघ्न डालो, जो मुझे इन्द्रपदसे हटाकर स्वयं स्वर्गका राज्य भोगना चाहता है।'

इन्द्रका यह आदेश पाकर हम दोनों उनके सामनेसे चलकर गोदावरीके तीरपर, जहाँ वे मुनि तपस्या करते थे, आयीं। वहाँ मन्द एवं गम्भीर स्वरसे बजते हुए मृदंग तथा मधुर वेणुनादके साथ हम दोनोंने अन्य अप्सराओंसहित मधुर स्वरमें गान आरम्भ किया। इतना ही नहीं, उन योगी महात्माको वशमें करनेके लिये हमलोग स्वर, ताल और लयके साथ नृत्य भी करने लगीं। बीच-बीचमें जरा-जरा-सा अंचल खिसकनेपर उन्हें हमारी छाती भी दीख जाती थी। हम दोनोंकी उन्मत्त गति कामभावका उद्दीपन करनेवाली थी, किंतु उसने उन निर्विकार चित्तवाले महात्माके मनमें क्रोधका संचार कर दिया। तब उन्होंने हाथसे जल छोड़कर हमें क्रोधपूर्वक शाप दिया—'अरी! तुम दोनों गंगाजीके तटपर बेरके वृक्ष हो जाओ।' यह सुनकर हमलोगोंने बड़ी विनयके साथ कहा—'महात्मन्! हम दोनों पराधीन थीं, अतः हमारे द्वारा जो दुष्कर्म बन गया है, उसे आप क्षमा करें।' यों कहकर हमने

मुनिको प्रसन्न कर लिया। तब उन पवित्र चित्तवाले मुनिने हमारे शापोद्धारकी अवधि निश्चित करते हुए कहा—'भरतमुनिके आनेतक ही तुमपर यह शाप लागू होगा। उसके बाद तुमलोगोंका मर्त्यलोकमें जन्म होगा और पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहेगी।'

'मुने! जिस समय हम दोनों बेर-वृक्षके रूपमें खड़ी थीं, उस समय आपने हमारे समीप आकर गीताके चौथे अध्यायका जप करते हुए हमारा उद्धार किया था, अतः हम आपको प्रणाम करती हैं। आपने केवल शापसे ही नहीं, इस भयानक संसारसे भी गीताके चतुर्थ अध्यायके पाठद्वारा हमें मुक्त कर दिया।

श्रीभगवान् कहते हैं—**उन दोनोंके इस प्रकार कहनेपर मुनि बहुत ही प्रसन्न हुए और उनसे पूजित हो विदा लेकर जैसे आये थे, वैसे ही चले गये तथा वे कन्याएँ भी बड़े आदरके साथ प्रतिदिन गीताके चतुर्थ अध्यायका पाठ करने लगीं, जिससे उनका उद्धार हो गया।**

श्रीमद्भगवद्गीताके पाँचवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—**देवि! अब सब लोगोंद्वारा सम्मानित पाँचवें अध्यायका माहात्म्य संक्षेपसे बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो। मद्रदेशमें पुरुकुत्सपुर नामक एक नगर है। उसमें पिंगल नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह वेदपाठी ब्राह्मणोंके विख्यात वंशमें, जो सर्वथा निष्कलंक था, उत्पन्न हुआ था, किंतु अपने कुलके लिये उचित वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायको छोड़कर ढोल आदि बजाते हुए उसने नाच-गानमें मन लगाया। गीत, नृत्य और बाजा बजानेकी कलामें परिश्रम करके पिंगलने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली और उसीसे उसका राजभवनमें भी प्रवेश हो गया। अब वह राजाके साथ रहने लगा और परायी स्त्रियोंको बुला-बुलाकर उनका उपभोग करने लगा। स्त्रियोंके सिवा और कहीं उसका मन नहीं लगता था। धीरे-धीरे अभिमान बढ़ जानेसे उच्छृङ्खल होकर वह एकान्तमें राजासे दूसरोंके दोष बतलाने लगा। पिंगलकी एक स्त्री थी, जिसका नाम था अरुणा। वह**

नीच कुलमें उत्पन्न हुई थी और कामी पुरुषोंके साथ विहार करनेकी इच्छासे सदा उन्हींकी खोजमें घूमा करती थी। उसने पतिको अपने मार्गका कण्टक समझकर एक दिन आधी रातमें घरके भीतर ही उसका सिर काटकर मार डाला और उसकी लाशको जमीनमें गाड़ दिया। इस प्रकार प्राणोंसे वियुक्त होनेपर वह यमलोकमें पहुँचा और भीषण नरकोंका उपभोग करके निर्जन वनमें गिद्ध हुआ।

अरुणा भी भगन्दर रोगसे अपने सुन्दर शरीरको त्यागकर घोर नरक भोगनेके पश्चात् उसी वनमें शुकी हुई। एक दिन वह दाना चुगनेकी इच्छासे इधर-उधर फुदक रही थी, इतनेमें ही उस गिद्धने पूर्व जन्मके वैरका स्मरण करके उसे अपने तीखे नखोंसे फाड़ डाला। शुकी घायल होकर पानीसे भरी हुई मनुष्यकी खोपड़ीमें गिरी। गिद्ध पुनः उसकी ओर झपटा। इतनेमें ही जाल फैलानेवाले बहेलियोंने उसे भी बाणोंका निशाना बनाया। उसकी पूर्वजन्मकी पत्नी शुकी उस खोपड़ीके जलमें डूबकर प्राण त्याग चुकी थी। फिर वह क्रूर पक्षी भी उसीमें गिरकर डूब गया। तब यमराजके दूत उन दोनोंको यमराजके लोकमें ले गये। वहाँ अपने पूर्वकृत पापकर्मको याद करके दोनों ही भयभीत हो रहे थे। तदनन्तर यमराजने जब उनके घृणित कर्मोंपर दृष्टिपात किया, तब उन्हें मालूम हुआ कि मृत्युके समय अकस्मात् खोपड़ीके जलमें स्नान करनेसे इन दोनोंका पाप नष्ट हो चुका है। तब उन्होंने उन दोनोंको मनोवांछित लोकमें जानेकी आज्ञा दी। यह सुनकर अपने पापको याद करते हुए वे दोनों बड़े विस्मयमें पड़े और पास जाकर धर्मराजके चरणोंमें प्रणाम करके पूछने लगे—'भगवन्! हम दोनोंने पूर्वजन्ममें अत्यन्त घृणित पापका संचय किया है। फिर हमें मनोवांछित लोकोंमें भेजनेका क्या कारण है? बताइये।'

यमराजने कहा—**गंगाके किनारे वट नामक एक उत्तम ब्रह्मज्ञानी रहते थे। वे एकान्तसेवी, ममतारहित, शान्त, विरक्त और किसीसे भी द्वेष न रखनेवाले थे। प्रतिदिन गीताके पाँचवें अध्यायका जप करना उनका सदाका नियम था। पाँचवें अध्यायको श्रवण कर लेनेपर महापापी पुरुष भी सनातन ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसी पुण्यके प्रभावसे शुद्धचित्त होकर उन्होंने अपने शरीरका परित्याग किया था। गीताके पाठसे जिनका शरीर निर्मल हो गया था, जो आत्मज्ञान प्राप्त कर चुके थे, उन्हीं महात्माकी खोपड़ीका जल पाकर तुम दोनों पवित्र हो गये हो। अतः अब तुम दोनों मनोवांछित लोकोंको जाओ; क्योंकि गीताके पाँचवें अध्यायके माहात्म्यसे तुम दोनों शुद्ध हो गये हो।**

श्रीभगवान् कहते हैं—**सबके प्रति समान भाव रखनेवाले धर्मराजके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए और विमानपर बैठकर वैकुण्ठधामको चले गये।**

श्रीमद्भगवद्गीताके छठे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—

सुमुखि! अब मैं छठे अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ, जिसे सुननेवाले मनुष्योंके लिये मुक्ति करतलगत हो जाती है। गोदावरी नदीके तटपर प्रतिष्ठानपुर (पैठण) नामक एक विशाल नगर है, जहाँ मैं पिप्पलेशके नामसे विख्यात होकर रहता हूँ। उस नगरमें जानश्रुति नामक एक राजा रहते थे, जो भूमण्डलकी प्रजाको अत्यन्त प्रिय थे।

उनका प्रताप मार्तण्ड-मण्डलके प्रचण्ड तेजके समान जान पड़ता था। प्रतिदिन होनेवाले उनके यज्ञके धुएँसे नन्दनवनके कल्पवृक्ष इस प्रकार काले पड़ गये थे, मानो राजाकी असाधारण दानशीलता देखकर वे लज्जित हो गये हों। उनके यज्ञमें प्राप्त पुरोडाशके रसास्वादनमें सदा आसक्त होनेके कारण देवतालोग कभी प्रतिष्ठानपुरको छोड़कर बाहर नहीं जाते थे। उनके दानके समय छोड़े हुए जलकी धारा, प्रतापरूपी तेज और यज्ञके धूमोंसे पुष्ट होकर मेघ ठीक समयपर वर्षा करते थे। उस राजाके शासनकालमें ईतियों (खेतीमें होनेवाले छः प्रकारके उपद्रवों)-के लिये कहीं थोड़ा भी स्थान नहीं मिलता था और अच्छी नीतियोंका सर्वत्र प्रसार होता था। वे बावली, कुएँ और पोखरे खुदवानेके बहाने मानो प्रतिदिन पृथ्वीके भीतरकी निधियोंका अवलोकन करते थे। एक समय राजाके दान, तप, यज्ञ और प्रजापालनसे संतुष्ट होकर स्वर्गके देवता उन्हें वर देनेके लिये आये। वे कमलनालके समान उज्ज्वल हंसोंका रूप धारणकर अपनी पाँखें हिलाते हुए आकाशमार्गसे चलने लगे। बड़ी उतावलीके साथ उड़ते हुए वे सभी हंस परस्पर बातचीत भी करते जाते थे। उनमेंसे भद्राश्व आदि दो-तीन हंस वेगसे उड़कर आगे निकल गये। तब पीछेवाले हंसोंने आगे जानेवालोंको सम्बोधित करके कहा—'अरे भाई भद्राश्व! तुमलोग वेगसे चलकर आगे क्यों हो गये? यह मार्ग बड़ा दुर्गम है; इसमें हम सबको साथ मिलकर चलना चाहिये। क्या तुम्हें दिखायी नहीं देता, यह सामने ही पुण्यमूर्ति महाराज जानश्रुतिका तेजःपुंज अत्यन्त स्पष्टरूपसे प्रकाशमान हो रहा है। [उस तेजसे भस्म होनेकी आशंका है, अतः सावधान होकर चलना चाहिये।]'

पीछेवाले हंसोंके ये वचन सुनकर आगेवाले हंस हँस पड़े

और उच्च स्वरसे उनकी बातोंकी अवहेलना करते हुए बोले—'अरे भाई! क्या इस राजा जानश्रुतिका तेज ब्रह्मवादी महात्मा रैक्वके तेजसे भी अधिक तीव्र है?'

हंसोंकी ये बातें सुनकर राजा जानश्रुति अपने ऊँचे महलकी छतसे उतर गये और सुखपूर्वक आसनपर विराजमान हो अपने सारथिको बुलाकर बोले—'जाओ, महात्मा रैक्वको यहाँ ले आओ।' राजाका यह अमृतके समान वचन सुनकर मह नामक सारथि प्रसन्नता प्रकट करता हुआ नगरसे बाहर निकला। सबसे पहले उसने मुक्तिदायिनी काशीपुरीकी यात्रा की, जहाँ जगत्के स्वामी भगवान् विश्वनाथ मनुष्योंको उपदेश दिया करते हैं। उसके बाद वह गयाक्षेत्रमें पहुँचा, जहाँ प्रफुल्ल नेत्रोंवाले भगवान् गदाधर सम्पूर्ण लोकोंका उद्धार करनेके लिये निवास करते हैं। तदनन्तर नाना तीर्थोंमें भ्रमण करता हुआ सारथि पापनाशिनी मथुरापुरीमें गया; यह भगवान् श्रीकृष्णका आदि स्थान है, जो परम महान् एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वेद और शास्त्रोंमें वह तीर्थ त्रिभुवनपति भगवान् गोविन्दके अवतारस्थानके नामसे प्रसिद्ध है। नाना देवता और ब्रह्मर्षि उसका सेवन करते हैं। मथुरा नगर कालिन्दी (यमुना)-के किनारे शोभा पाता है। उसकी आकृति अर्द्धचन्द्रके समान प्रतीत होती है। वह सब तीर्थोंके निवाससे परिपूर्ण है। परम आनन्द प्रदान करनेके कारण सुन्दर प्रतीत होता है। गोवर्धन पर्वतके होनेसे मथुरामण्डलकी शोभा और भी बढ़ गयी है। वह पवित्र वृक्षों और लताओंसे आवृत है। उसमें बारह वन हैं। वह परम पुण्यमय तथा सबको विश्राम देनेवाले श्रुतियोंके सारभूत भगवान् श्रीकृष्णकी आधारभूमि है।

तत्पश्चात् मथुरासे पश्चिम और उत्तर दिशाकी ओर बहुत दूरतक जानेपर सारथिको काश्मीर नामक नगर दिखायी दिया, जहाँ शङ्खके समान उज्ज्वल गगनचुम्बी महलोंकी पंक्तियाँ भगवान्

शंकरके अट्टहासकी भाँति शोभा पाती हैं। जहाँ ब्राह्मणोंके शास्त्रीय आलाप सुनकर मूक मनुष्य भी सुन्दर वाणी और पदोंका उच्चारण करते हुए देवताके समान हो जाते हैं। जहाँ निरन्तर होनेवाले यज्ञ-धूमसे व्याप्त होनेके कारण आकाश-मण्डल मेघोंसे धुलते रहनेपर भी अपनी कालिमा नहीं छोड़ता। जहाँ उपाध्यायके पास आकर छात्र जन्मकालीन अभ्याससे ही सम्पूर्ण कलाएँ स्वतः पढ़ लेते हैं तथा जहाँ माणिकेश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् चन्द्रशेखर देहधारियोंको वरदान देनेके लिये नित्य निवास करते हैं। काश्मीरके राजा माणिक्येशने दिग्विजयमें समस्त राजाओंको जीतकर भगवान् शिवका पूजन किया था, तभीसे उनका नाम माणिक्येश्वर हो गया था। उन्हींके मन्दिरके दरवाजेपर महात्मा रैक्व एक छोटी-सी गाड़ीपर बैठे अपने अंगोंको खुजलाते हुए वृक्षकी छायाका सेवन कर रहे थे। इसी अवस्थामें सारथिने उन्हें देखा। राजाके बताये हुए भिन्न-भिन्न चिह्नोंसे उसने शीघ्र ही रैक्वको पहचान लिया और उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'ब्रह्मन्! आप किस स्थानपर रहते हैं? आपका पूरा नाम क्या है? आप तो सदा स्वच्छन्द विचरनेवाले हैं, फिर यहाँ किस लिये ठहरे हैं? इस समय आपका क्या करनेका विचार है?'

सारथिके ये वचन सुनकर परम आनन्दमें निमग्न महात्मा रैक्वने कुछ सोचकर उससे कहा—'यद्यपि हम पूर्णकाम हैं—हमें किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है, तथापि कोई भी हमारी मनोवृत्तिके अनुसार परिचर्या कर सकता है।' रैक्वके हार्दिक अभिप्रायको आदरपूर्वक ग्रहण करके सारथि धीरेसे राजाके पास चल दिया। वहाँ पहुँचकर राजाको प्रणाम करके उसने हाथ जोड़ सारा समाचार निवेदन किया। उस समय स्वामीके दर्शनसे उसके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी। सारथिके वचन सुनकर राजाके

नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे। उनके हृदयमें रैक्वका सत्कार करनेकी श्रद्धा जाग्रत् हुई। उन्होंने दो खच्चरियोंसे जुती हुई एक गाड़ी लेकर यात्रा की। साथ ही मोतीके हार, अच्छे-अच्छे वस्त्र और एक सहस्त्र गौएँ भी ले लीं। काश्मीर-मण्डलमें महात्मा रैक्व जहाँ रहते थे उस स्थानपर पहुँचकर राजाने सारी वस्तुएँ उनके आगे निवेदन कर दीं और पृथ्वीपर पड़कर साष्टांग प्रणाम किया। महात्मा रैक्व अत्यन्त भक्तिके साथ चरणोंमें पड़े हुए राजा जानश्रुतिपर कुपित हो उठे और बोले—'रे शूद्र! तू दुष्ट राजा है। क्या तू मेरा वृत्तान्त नहीं जानता? यह खच्चरियोंसे जुती हुई अपनी ऊँची गाड़ी ले जा। ये वस्त्र, ये मोतियोंके हार और ये दूध देनेवाली गौएँ भी स्वयं ही ले जा।' इस तरह आज्ञा देकर रैक्वने राजाके मनमें भय उत्पन्न कर दिया। तब राजाने शापके भयसे महात्मा रैक्वके दोनों चरण पकड़ लिये और भक्तिपूर्वक कहा—'ब्रह्मन्! मुझपर प्रसन्न होइये। भगवन्! आपमें यह अद्‌भुत माहात्म्य कैसे आया? प्रसन्न होकर मुझे ठीक-ठीक बताइये।'

रैक्वने कहा—राजन्! मैं प्रतिदिन गीताके छठे अध्यायका जप करता हूँ, इसीसे मेरी तेजोराशि देवताओंके लिये भी दुःसह है।

तदनन्तर परम बुद्धिमान् राजा जानश्रुतिने यत्नपूर्वक महात्मा रैक्वसे गीताके छठे अध्यायका अभ्यास किया। इससे उन्हें मोक्षकी प्राप्ति हुई। इधर रैक्व भी भगवान् माणिक्येश्वरके समीप मोक्षदायक गीताके छठे अध्यायका जप करते हुए सुखसे रहने लगे। हंसका रूप धारण करके वरदान देनेके लिये आये हुए देवता भी विस्मित होकर स्वेच्छानुसार चले गये। जो मनुष्य सदा इस एक ही अध्यायका जप करता है, वह भी भगवान् विष्णुके ही स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीताके सातवें अध्यायका माहात्म्य
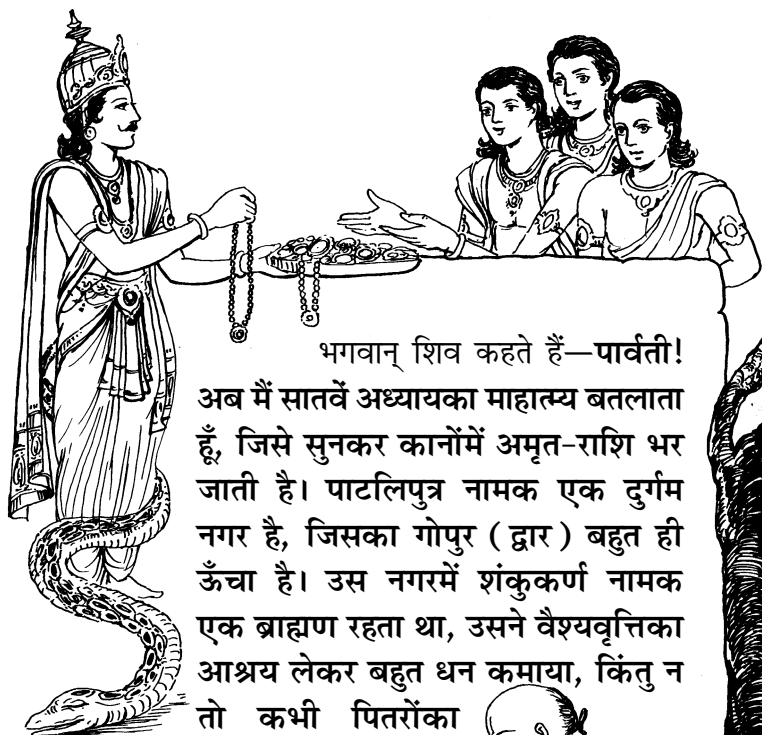
भगवान् शिव कहते हैं—**पार्वती! अब मैं सातवें अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ, जिसे सुनकर कानोंमें अमृत-राशि भर जाती है। पाटलिपुत्र नामक एक दुर्गम नगर है, जिसका गोपुर (द्वार) बहुत ही ऊँचा है। उस नगरमें शंकुकर्ण नामक एक ब्राह्मण रहता था, उसने वैश्यवृत्तिका आश्रय लेकर बहुत धन कमाया, किंतु न तो कभी पितरोंका तर्पण किया और न देवताओंका पूजन ही। वह धनोपार्जनमें तत्पर होकर राजाओंको ही भोज दिया करता था। एक समयकी बात है, उस ब्राह्मणने अपना चौथा विवाह करनेके लिये पुत्रों और बन्धुओंके साथ यात्रा की। मार्गमें आधी रातके समय जब वह सो रहा था, एक सर्पने कहींसे आकर उसकी बाँहमें काट लिया। उसके**
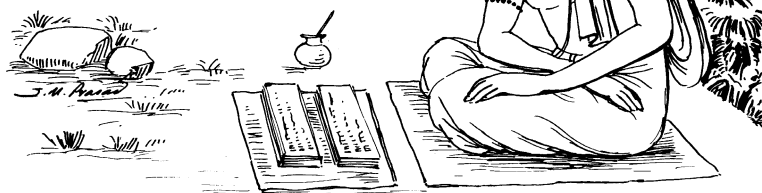
काटते ही ऐसी अवस्था हो गयी कि मणि, मन्त्र और ओषधि आदिसे भी उसके शरीरकी रक्षा असाध्य जान पड़ी। तत्पश्चात् कुछ ही क्षणोंमें उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। फिर बहुत समयके बाद वह प्रेत सर्प-योनिमें उत्पन्न हुआ। उसका चित्त धनकी वासनामें बँधा था। उसने पूर्व-वृत्तान्तको स्मरण करके सोचा—'मैंने जो घरके बाहर करोड़ोंकी संख्यामें अपना धन गाड़ रखा है, उससे इन पुत्रोंको वंचित करके स्वयं ही उसकी रक्षा करूँगा।' एक दिन साँपकी योनिसे पीड़ित होकर पिताने स्वप्नमें अपने पुत्रोंके समक्ष आकर अपना मनोभाव बताया, तब उसके निरंकुश पुत्रोंने सबेरे उठकर बड़े विस्मयके साथ एक-दूसरेसे स्वप्नकी बातें कहीं। उनमेंसे मझला पुत्र कुदाल हाथमें लिये घरसे निकला और जहाँ उसके पिता सर्पयोनि धारण करके रहते थे, उस स्थानपर गया। यद्यपि उसे धनके स्थानका ठीक-ठीक पता नहीं था तो भी उसने चिह्नोंसे उसका ठीक निश्चय कर लिया और लोभबुद्धिसे वहाँ पहुँचकर बाँबीको खोदना आरम्भ किया। तब उस बाँबीसे बड़ा भयानक साँप प्रकट हुआ और बोला—'ओ मूढ़! तू कौन है, किसलिये आया है, क्यों बिल खोद रहा है, अथवा किसने तुझे भेजा है? ये सारी बातें मेरे सामने बता।'

पुत्र बोला—**मैं आपका पुत्र हूँ। मेरा नाम शिव है। मैं रात्रिमें देखे हुए स्वप्नसे विस्मित होकर यहाँका सुवर्ण लेनेके कौतूहलसे आया हूँ।**

पुत्रकी यह वाणी सुनकर वह साँप हँसता हुआ उच्चस्वरसे इस प्रकार स्पष्ट वचन बोला—'यदि तू मेरा पुत्र है तो मुझे शीघ्र ही बन्धनसे मुक्त कर। मैं पूर्वजन्मके गाड़े हुए धनके ही लिये सर्पयोनिमें उत्पन्न हुआ हूँ।'

पुत्रने पूछा—**पिताजी! आपकी मुक्ति कैसे होगी? इसका**

उपाय मुझे बताइये; क्योंकि मैं इस रातमें सब लोगोंको छोड़कर आपके पास आया हूँ।

पिताने कहा—**बेटा! गीताके अमृतमय सप्तम अध्यायको छोड़कर मुझे मुक्त करनेमें तीर्थ, दान, तप और यज्ञ भी सर्वथा समर्थ नहीं हैं। केवल गीताका सातवाँ अध्याय ही प्राणियोंके जरा-मृत्यु आदि दुःखको दूर करनेवाला है। पुत्र! मेरे श्राद्धके दिन सप्तम अध्यायका पाठ करनेवाले ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक भोजन कराओ। इससे निःसन्देह मेरी मुक्ति हो जायगी। वत्स! अपनी शक्तिके अनुसार पूर्ण श्रद्धाके साथ वेद-विद्यामें प्रवीण अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराना।**

सर्पयोनिमें पड़े हुए पिताके ये वचन सुनकर सभी पुत्रोंने उसकी आज्ञाके अनुसार तथा उससे भी अधिक किया। तब शंकुकर्णने अपने सर्पशरीरको त्यागकर दिव्य देह धारण किया और सारा धन पुत्रोंके अधीन कर दिया। पिताने करोड़ोंकी संख्यामें जो धन बाँटकर दिया था, उससे वे सदाचारी पुत्र बहुत प्रसन्न हुए। उनकी बुद्धि धर्ममें लगी हुई थी; इसलिये उन्होंने बावली, कुआँ, पोखरा, यज्ञ तथा देवमन्दिरके लिये उस धनका उपयोग किया और अन्नशाला भी बनवायी। तत्पश्चात् सातवें अध्यायका सदा जप करते हुए उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया । पार्वती! यह तुम्हें सातवें अध्यायका माहात्म्य बताया गया है; जिसके श्रवणमात्रसे मानव सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीताके आठवें अध्यायका माहात्म्य

भगवान् शिव कहते हैं—देवि! अब आठवें अध्यायका माहात्म्य सुनो! उसके सुननेसे तुम्हें बड़ी प्रसन्नता होगी। [लक्ष्मीजीके पूछनेपर भगवान् विष्णुने उन्हें इस प्रकार अष्टम अध्यायका माहात्म्य बतलाया था।] दक्षिणमें आमर्दकपुर नामक एक प्रसिद्ध नगर है। वहाँ भावशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था, जिसने वेश्याको पत्नी बनाकर रखा था। वह मांस खाता, मदिरा पीता, श्रेष्ठ पुरुषोंका धन चुराता, परायी स्त्रीसे व्यभिचार करता और शिकार खेलनेमें दिलचस्पी रखता था। वह बड़े भयानक स्वभावका था और मनमें बड़े-बड़े हौसले रखता था। एक दिन मदिरा पीनेवालोंका समाज जुटा था। उसमें भावशर्माने भरपेट ताड़ी पी—खूब गलेतक उसे चढ़ाया; अतः अजीर्णसे अत्यन्त पीड़ित होकर वह पापात्मा कालवश मर गया और बहुत बड़ा ताड़का वृक्ष हुआ। उसकी

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं
किं कर्म पुरुषोत्तम ।
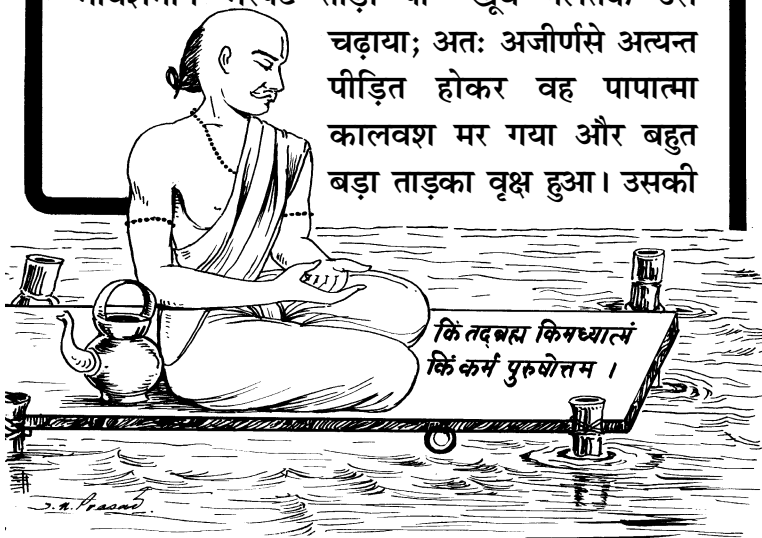
घनी और ठंडी छायाका आश्रय लेकर ब्रह्मराक्षस-भावको प्राप्त हुए कोई पति-पत्नी वहाँ रहा करते थे।

उनके पूर्वजन्मकी घटना इस प्रकार है। एक कुशीबल नामक ब्राह्मण था, जो वेद-वेदांगके तत्त्वोंका ज्ञाता, सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थका विशेषज्ञ और सदाचारी था। उसकी स्त्रीका नाम कुमति था। वह बड़े खोटे विचारकी थी। वह ब्राह्मण विद्वान् होनेपर भी अत्यन्त लोभवश अपनी स्त्रीके साथ प्रतिदिन भैंस, कालपुरुष और घोड़े आदि बड़े दानोंको ग्रहण किया करता था; परंतु दूसरे ब्राह्मणोंको दानमें मिली हुई कौड़ी भी नहीं देता था। वे ही दोनों पति-पत्नी कालवश मृत्युको प्राप्त होकर ब्रह्मराक्षस हुए। वे भूख और प्याससे पीड़ित हो इस पृथ्वीपर घूमते हुए उसी ताड़वृक्षके पास आये और उसके मूल भागमें विश्राम करने लगे। इसके बाद पत्नीने पतिसे पूछा—'नाथ! हमलोगोंका यह महान् दुःख कैसे दूर होगा तथा इस ब्रह्मराक्षस-योनिसे किस प्रकार हम दोनोंकी मुक्ति होगी?' तब उस ब्राह्मणने कहा—'ब्रह्मविद्याके उपदेश, अध्यात्म-तत्त्वके विचार और कर्मविधिके ज्ञान बिना किस प्रकार संकटसे छुटकारा मिल सकता है।'

यह सुनकर पत्नीने पूछा—'किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम' (**पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है और कर्म कौन-सा है?**) उसकी पत्नीके इतना कहते ही जो आश्चर्यकी घटना घटित हुई, उसको सुनो। उपर्युक्त वाक्य गीताके आठवें अध्यायका आधा श्लोक था। उसके श्रवणसे वह वृक्ष उस समय ताड़के रूपको त्यागकर भावशर्मा नामक ब्राह्मण हो गया । तत्काल ज्ञान होनेसे विशुद्ध-चित्त होकर वह पापके चोलेसे मुक्त हो गया। तथा उस आधे श्लोकके ही माहात्म्यसे वे पति-पत्नी भी मुक्त हो गये। उनके मुखसे दैवात् ही आठवें अध्यायका आधा श्लोक निकल पड़ा था। तदनन्तर आकाशसे

एक दिव्य विमान आया और वे दोनों पति-पत्नी उस विमानपर आरूढ़ होकर स्वर्गलोकको चले गये। वहाँका यह सारा वृत्तान्त अत्यन्त आश्चर्यजनक था।

उसके बाद उस बुद्धिमान् ब्राह्मण भावशर्माने आदरपूर्वक उस आधे श्लोकको लिखा और देवदेव जनार्दनकी आराधना करनेकी इच्छासे वह मुक्तिदायिनी काशीपुरीमें चला गया। वहाँ उस उदार बुद्धिवाले ब्राह्मणने भारी तपस्या आरम्भ की। उसी समय क्षीरसागरकी कन्या भगवती लक्ष्मीने हाथ जोड़कर देवताओंके भी देवता जगत्पति जनार्दनसे पूछा—'नाथ! आप सहसा नींद त्यागकर खड़े क्यों हो गये?'

श्रीभगवान् बोले—**देवि! काशीपुरीमें भागीरथीके तटपर बुद्धिमान् ब्राह्मण भावशर्मा मेरे भक्तिरससे परिपूर्ण होकर अत्यन्त कठोर तपस्या कर रहा है। वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके गीताके आठवें अध्यायके आधे श्लोकका जप करता है। मैं उसकी तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ। बहुत देरसे उसकी तपस्याके अनुरूप फलका विचार कर रहा था। प्रिये! इस समय वह फल देनेको मैं उत्कण्ठित हूँ।**

पार्वतीजीने पूछा—**भगवन्! श्रीहरि सदा प्रसन्न होनेपर भी जिसके लिये चिन्तित हो उठे थे, उस भगवद्भक्त भावशर्माने कौन-सा फल प्राप्त किया?**

श्रीमहादेवजी बोले—**देवि! द्विजश्रेष्ठ भावशर्मा प्रसन्न हुए भगवान् विष्णुके प्रसादको पाकर आत्यन्तिक सुख (मोक्ष)-को प्राप्त हुआ तथा उसके अन्य वंशज भी, जो नरक-यातनामें पड़े थे, उसीके शुद्धकर्मसे भगवद्धामको प्राप्त हुए। पार्वती! यह आठवें अध्यायका माहात्म्य थोड़ेमें ही तुम्हें बताया है। इसपर सदा विचार करते रहना चाहिये।**

श्रीमद्भगवद्गीताके नवें अध्यायका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—**पार्वती! अब मैं आदरपूर्वक नवम अध्यायके माहात्म्यका वर्णन करूँगा, तुम स्थिर होकर सुनो। नर्मदाके तटपर माहिष्मती नामकी एक नगरी है। वहाँ माधव नामके एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेद-वेदांगोंके तत्त्वज्ञ और समय-समयपर आनेवाले अतिथियोंके प्रेमी थे। उन्होंने विद्याके द्वारा बहुत धन कमाकर एक महान् यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया। उस यज्ञमें बलि देनेके लिये एक बकरा मँगाया गया। जब उसके शरीरकी पूजा हो गयी, तब सबको आश्चर्यमें डालते हुए उस बकरेने हँसकर उच्च स्वरसे कहा—'ब्रह्मन्! इन बहुत-से यज्ञोंद्वारा क्या लाभ है। इनका फल तो नष्ट हो जानेवाला है तथा ये जन्म, जरा और मृत्युके भी कारण हैं। यह सब करनेपर भी मेरी जो वर्तमान दशा है, इसे देख लो।' बकरेके इस अत्यन्त**

कौतूहलजनक वचनको सुनकर यज्ञमण्डपमें रहनेवाले सभी लोग बहुत ही विस्मित हुए। तब वे यजमान ब्राह्मण हाथ जोड़ अपलक नेत्रोंसे देखते हुए बकरेको प्रणाम करके श्रद्धा और आदरके साथ पूछने लगे।

ब्राह्मण बोले—**आप किस जातिके थे? आपका स्वभाव और आचरण कैसा था? तथा किस कर्मसे आपको बकरेकी योनि प्राप्त हुई? यह सब मुझे बताइये।**

बकरा बोला—**ब्रह्मन्! मैं पूर्वजन्ममें ब्राह्मणोंके अत्यन्त निर्मल कुलमें उत्पन्न हुआ था। समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला और वेद-विद्यामें प्रवीण था। एक दिन मेरी स्त्रीने भगवती दुर्गाकी भक्तिसे विनम्र होकर अपने बालकके रोगकी शान्तिके लिये बलि देनेके निमित्त मुझसे एक बकरा माँगा। तत्पश्चात् जब चण्डिकाके मन्दिरमें वह बकरा मारा जाने लगा, उस समय उसकी माताने मुझे शाप दिया—'ओ ब्राह्मणोंमें नीच, पापी! तू मेरे बच्चेका वध करना चाहता है; इसलिये तू भी बकरेकी योनिमें जन्म लेगा।' द्विजश्रेष्ठ! तब कालवश मृत्युको प्राप्त होकर मैं बकरा हुआ। यद्यपि मैं पशु-योनिमें पड़ा हूँ, तो भी मुझे अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण बना हुआ है। ब्रह्मन्! यदि आपको सुननेकी उत्कण्ठा हो, तो मैं एक और भी आश्चर्यकी बात बताता हूँ। कुरुक्षेत्र नामका एक नगर है, जो मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वहाँ चन्द्रशर्मा नामक एक सूर्यवंशी राजा राज्य करते थे। एक समय जब कि सूर्यग्रहण लगा था, राजाने बड़ी श्रद्धाके साथ कालपुरुषका दान करनेकी तैयारी की। उन्होंने वेद-वेदांगोंके पारगामी एक विद्वान् ब्राह्मणको बुलवाया और पुरोहितके साथ वे तीर्थके पावन जलसे स्नान करनेको चले। तीर्थके पास पहुँचकर राजाने स्नान किया और दो वस्त्र धारण किये। फिर पवित्र एवं प्रसन्नचित्त होकर**

उन्होंने श्वेत चन्दन लगाया और बगलमें खड़े हुए पुरोहितका हाथ पकड़कर तत्कालोचित मनुष्योंसे घिरे हुए अपने स्थानपर लौट आये। आनेपर राजाने यथोचित विधिसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको काल-पुरुषका दान किया।

तब कालपुरुषका हृदय चीरकर उसमेंसे एक पापात्मा चाण्डाल प्रकट हुआ। फिर थोड़ी देरके बाद निन्दा भी चाण्डालीका रूप धारण करके कालपुरुषके शरीरसे निकली और ब्राह्मणके पास आ गयी। इस प्रकार चाण्डालोंकी वह जोड़ी आँखें लाल किये निकली और ब्राह्मणके शरीरमें हठात् प्रवेश करने लगी। ब्राह्मण मन-ही-मन गीताके नवम अध्यायका जप करते थे और राजा चुपचाप यह सब कौतुक देखने लगे। ब्राह्मणके अन्तःकरणमें भगवान् गोविन्द शयन करते थे। वे उन्हींका ध्यान करने लगे। ब्राह्मणने [जब गीताके नवम अध्यायका जप करते हुए] अपने आश्रयभूत भगवान्का ध्यान किया, उस समय गीताके अक्षरोंसे प्रकट हुए विष्णुदूतोंद्वारा पीड़ित होकर वे दोनों चाण्डाल भाग चले। उनका उद्योग निष्फल हो गया। इस प्रकार इस घटनाको प्रत्यक्ष देखकर राजाके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे। उन्होंने ब्राह्मणसे पूछा—'विप्रवर! इस महाभयंकर आपत्तिको आपने कैसे पार किया? आप किस मन्त्रका जप तथा किस देवताका स्मरण कर रहे थे? वह पुरुष तथा वह स्त्री कौन थी? वे दोनों कैसे उपस्थित हुए? फिर वे शान्त कैसे हो गये? यह सब मुझे बतलाइये।'

ब्राह्मणने कहा—राजन्! चाण्डालका रूप धारण करके भयंकर पाप ही प्रकट हुआ था तथा वह स्त्री निन्दाकी साक्षात् मूर्ति थी। मैं इन दोनोंको ऐसा ही समझता हूँ। उस समय मैं गीताके नवें अध्यायके मन्त्रोंकी माला जपता था। उसीका माहात्म्य है कि सारा संकट दूर हो गया। महीपते!

मैं नित्य ही गीताके नवम अध्यायका जप करता हूँ उसीके प्रभावसे प्रतिग्रहजनित आपत्तियोंके पार हो सका हूँ।

यह सुनकर राजाने उसी ब्राह्मणसे गीताके नवम अध्यायका अभ्यास किया, फिर वे दोनों ही परमशान्ति (मोक्ष)-को प्राप्त हो गये।

[यह कथा सुनकर ब्राह्मणने बकरेको बन्धनसे मुक्त कर दिया और गीताके नवें अध्यायके अभ्याससे परमगतिको प्राप्त किया।]

श्रीमद्भगवद्गीताके दसवें अध्यायका माहात्म्य

भगवान् शिव कहते हैं—**सुन्दरि! अब तुम दशम अध्यायके माहात्म्यकी परमपावन कथा सुनो, जो स्वर्गरूपी दुर्गमें जानेके लिये सुन्दर सोपान और प्रभावकी चरम सीमा है। काशीपुरीमें धीरबुद्धि नामसे विख्यात एक ब्राह्मण था, जो मुझमें प्रिय नन्दीके समान भक्ति रखता था। वह पावन कीर्तिके अर्जनमें तत्पर रहनेवाला, शान्तचित्त और हिंसा, कठोरता एवं दुःसाहससे दूर रहनेवाला था। जितेन्द्रिय होनेके कारण वह निवृत्तिमार्गमें ही स्थित रहता था। उसने वेदरूपी समुद्रका पार पा लिया था।**
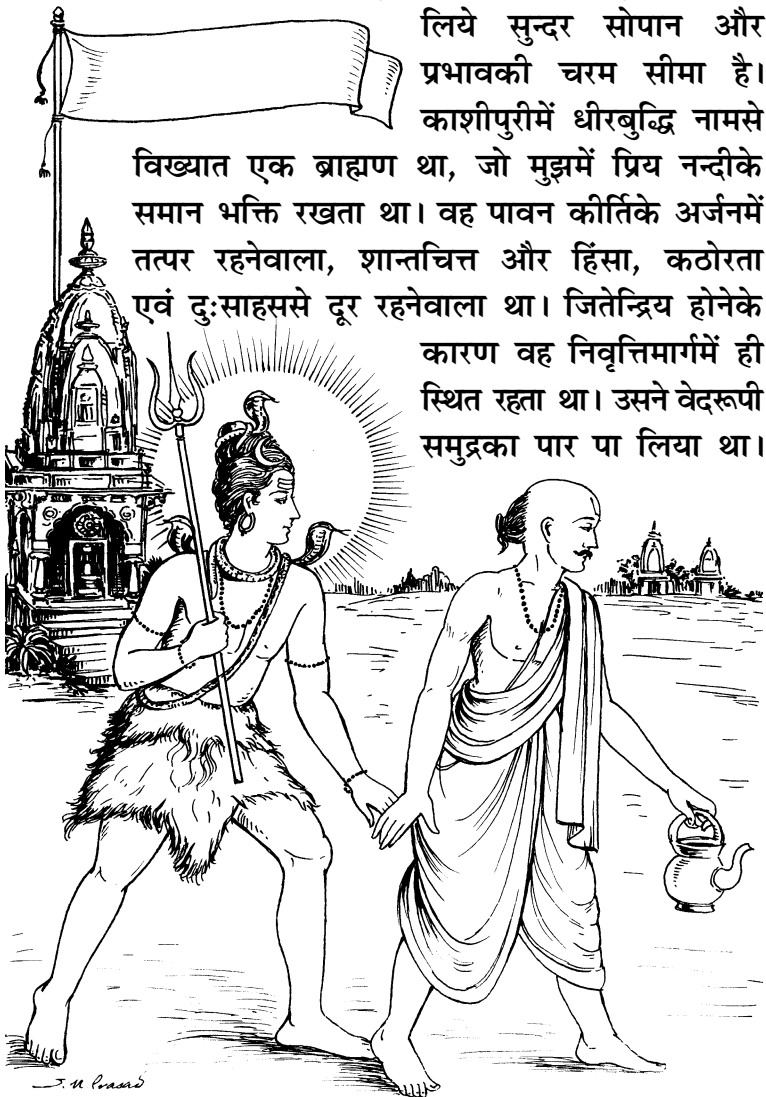
वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके तात्पर्यका ज्ञाता था। उसका चित्त सदा मेरे ध्यानमें संलग्न रहता था। वह मनको अन्तरात्मामें लगाकर सदा आत्मतत्त्वका साक्षात्कार किया करता था; अतः जब वह चलने लगता, तब मैं प्रेमवश उसके पीछे दौड़-दौड़कर उसे हाथका सहारा देता रहता था।

यह देख मेरे पार्षद भृंगिरिटिने पूछा—**भगवन्! इस प्रकार भला, किसने आपका दर्शन किया होगा। इस महात्माने कौन-सा तप, होम अथवा जप किया है कि स्वयं आप ही पद-पदपर इसे हाथका सहारा देते चलते हैं?**

भृंगिरिटिका यह प्रश्न सुनकर मैंने इस प्रकार उत्तर देना आरम्भ किया। एक समयकी बात है, कैलासपर्वतके पार्श्वभागमें पुन्नाग वनके भीतर चन्द्रमाकी अमृतमयी किरणोंसे धुली हुई भूमिमें एक वेदीका आश्रय लेकर मैं बैठा हुआ था। मेरे बैठनेके क्षणभर बाद ही सहसा बड़े जोरकी आँधी उठी, वहाँके वृक्षोंकी शाखाएँ नीचे-ऊपर होकर आपसमें टकराने लगीं, कितनी ही टहनियाँ टूट-टूटकर बिखर गयीं। पर्वतकी अविचल छाया भी हिलने लगी। इसके बाद वहाँ महान् भयंकर शब्द हुआ, जिससे पर्वतकी कन्दराएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। तदनन्तर आकाशसे कोई विशाल पक्षी उतरा, जिसकी कान्ति काले मेघके समान थी। वह कज्जलकी राशि, अन्धकारके समूह अथवा पंख कटे हुए काले पर्वत-सा जान पड़ता था। पैरोंसे पृथ्वीका सहारा लेकर उस पक्षीने मुझे प्रणाम किया और एक सुन्दर नवीन कमल मेरे चरणोंमें रखकर स्पष्ट वाणीमें स्तुति करनी आरम्भ की।

पक्षी बोला—**देव! आपकी जय हो। आप चिदानन्दमयी सुधाके सागर तथा जगत्के पालक हैं। सदा सद्भावनासे युक्त एवं अनासक्तिकी लहरोंसे उल्लसित हैं। आपके वैभवका कहीं अन्त नहीं है। आपकी जय हो। अद्वैतवासनासे परिपूर्ण बुद्धिके**

द्वारा आप त्रिविध मलोंसे रहित हैं। आप जितेन्द्रिय भक्तोंके अधीन रहते हैं तथा ध्यानमें आपके स्वरूपका साक्षात्कार होता है। आप अविद्यामय उपाधिसे रहित, नित्यमुक्त, निराकार, निरामय, असीम, अहंकारशून्य, आवरणरहित और निर्गुण हैं। आपके चरणकमल शरणागत भक्तोंकी रक्षा करनेमें प्रवीण हैं। अपने भयंकर ललाटरूपी महासर्पकी विषज्वालासे आपने कामदेवको भस्म किया है। आपकी जय हो। आप प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे दूर होते हुए भी प्रामाण्यस्वरूप हैं। आपको बार-बार नमस्कार है। चैतन्यके स्वामी तथा त्रिभुवनरूपधारी आपको प्रणाम है। मैं श्रेष्ठ योगियोंद्वारा चुम्बित आपके उन चरण-कमलोंकी वन्दना करता हूँ, जो अपार भव-पापके समुद्रसे पार उतारनेमें अद्‌भुत शक्तिशाली हैं। महादेव! साक्षात् बृहस्पति भी आपकी स्तुति करनेकी धृष्टता नहीं कर सकते। सहस्र मुखोंवाले नागराज शेषमें भी इतनी चातुरी नहीं है कि वे आपके गुणोंका वर्णन कर सकें। फिर मेरे-जैसे छोटी बुद्धिवाले पक्षीकी तो बिसात ही क्या है।

उस पक्षीके द्वारा किये हुए इस स्तोत्रको सुनकर मैंने उससे पूछा—'विहंगम! तुम कौन हो और कहाँसे आये हो? तुम्हारी आकृति तो हंस-जैसी है, मगर रंग कौएका मिला है। तुम जिस प्रयोजनको लेकर यहाँ आये हो, उसे बताओ।'

पक्षी बोला—देवेश! मुझे ब्रह्माजीका हंस जानिये। धूर्जटे! जिस कर्मसे मेरे शरीरमें इस समय कालिमा आ गयी है, उसे सुनिये। प्रभो! यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं [अतः आपसे कोई भी बात छिपी नहीं है] तथापि यदि आप पूछते हैं तो बतलाता हूँ। सौराष्ट्र (सूरत) नगरके पास एक सुन्दर सरोवर है, जिसमें कमल लहलहाते रहते हैं। उसीमेंसे बालचन्द्रमाके टुकड़े-जैसे श्वेत मृणालोंके ग्रास लेकर मैं बड़ी तीव्र गतिसे आकाशमें उड़ रहा

था। उड़ते-उड़ते सहसा वहाँसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। जब होशमें आया और अपने गिरनेका कोई कारण न देख सका तो मन-ही-मन सोचने लगा—'अहो! यह मुझपर क्या आ पड़ा? आज मेरा पतन कैसे हो गया?' पके हुए कपूरके समान मेरे श्वेत शरीरमें यह कालिमा कैसे आ गयी? इस प्रकार विस्मित होकर मैं अभी विचार ही कर रहा था कि उस पोखरेके कमलोंमेंसे मुझे ऐसी वाणी सुनायी दी—'हंस! उठो, मैं तुम्हारे गिरने और काले होनेका कारण बताती हूँ।' तब मैं उठकर सरोवरके बीचमें गया और वहाँ पाँच कमलोंसे युक्त एक सुन्दर कमलिनीको देखा। उसको प्रणाम करके मैंने प्रदक्षिणा की और अपने पतनका सारा कारण पूछा।

कमलिनी बोली—**कलहंस! तुम आकाशमार्गसे मुझे लाँघकर गये हो, उसी पातकके परिणामवश तुम्हें पृथ्वीपर गिरना पड़ा है तथा उसीके कारण तुम्हारे शरीरमें कालिमा दिखायी देती है। तुम्हें गिरा देख मेरे हृदयमें दया भर आयी और जब मैं इस मध्यम कमलके द्वारा बोलने लगी हूँ, उस समय मेरे मुखसे निकली हुई सुगन्धको सूँघकर साठ हजार भँवरे स्वर्गलोकको प्राप्त हो गये हैं। पक्षिराज! जिस कारण मुझमें इतना वैभव—ऐसा प्रभाव आया है, उसे बतलाती हूँ; सुनो। इस जन्मसे पहले तीसरे जन्ममें मैं इस पृथ्वीपर एक ब्राह्मणकी कन्याके रूपमें उत्पन्न हुई थी। उस समय मेरा नाम सरोजवदना था। मैं गुरुजनोंकी सेवा करती हुई सदा एकमात्र पातिव्रत्यके पालनमें तत्पर रहती थी। एक दिनकी बात है, मैं एक मैनाको पढ़ा रही थी। इससे पतिसेवामें कुछ विलम्ब हो गया। इससे पतिदेवता कुपित हो गये और उन्होंने शाप दिया—'पापिनी! तू मैना हो जा।' मरनेके बाद यद्यपि मैं मैना ही हुई, तथापि पातिव्रत्यके प्रसादसे मुनियोंके ही घरमें मुझे आश्रय मिला। किसी मुनिकन्याने मेरा पालन-पोषण**

किया। मैं जिनके घरमें थी, वे ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल विभूतियोग नामसे प्रसिद्ध गीताके दसवें अध्यायका पाठ करते थे और मैं उस पापहारी अध्यायको सुना करती थी। विहंगम! काल आनेपर मैं मैनाका शरीर छोड़कर दशम अध्यायके माहात्म्यसे स्वर्गलोकमें अप्सरा हुई। मेरा नाम पद्मावती हुआ और मैं पद्माकी प्यारी सखी हो गयी। एक दिन मैं विमानसे आकाशमें विचर रही थी। उस समय सुन्दर कमलोंसे सुशोभित इस रमणीय सरोवरपर मेरी दृष्टि पड़ी और इसमें उतरकर ज्यों ही मैंने जलक्रीड़ा आरम्भ की, त्यों ही दुर्वासा मुनि आ धमके। उन्होंने वस्त्रहीन अवस्थामें मुझे देख लिया। उनके भयसे मैंने स्वयं ही एक कमलिनीका रूप धारण कर लिया। मेरे दोनों पैर दो कमल हुए। दोनों हाथ भी दो कमल हो गये और शेष अंगोंके साथ मेरा मुख भी एक कमल हुआ। इस प्रकार मैं पाँच कमलोंसे युक्त हुई। मुनिवर दुर्वासाने मुझे देखा। उनके नेत्र क्रोधाग्निसे जल रहे थे। वे बोले—'पापिनी! तू इसी रूपमें सौ वर्षोंतक पड़ी रह।' यह शाप देकर वे क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये। कमलिनी होनेपर भी विभूतियोगाध्यायके माहात्म्यसे मेरी वाणी लुप्त नहीं हुई है। मुझे लाँघनेमात्रके अपराधसे तुम पृथ्वीपर गिरे हो। पक्षिराज! यहाँ खड़े हुए तुम्हारे सामने ही आज मेरे शापकी निवृत्ति हो रही है, क्योंकि आज सौ वर्ष पूरे हो गये। मेरे द्वारा गाये जाते हुए उस उत्तम अध्यायको तुम भी सुन लो। उसके श्रवणमात्रसे तुम भी आज ही मुक्त हो जाओगे।

यों कहकर पद्मिनीने स्पष्ट एवं सुन्दर वाणीमें दसवें अध्यायका पाठ किया और वह मुक्त हो गयी। उसे सुननेके बाद उसीके दिये हुए इस उत्तम कमलको लाकर मैंने आपको अर्पण किया है।

इतनी कथा सुनाकर उस पक्षीने अपना शरीर त्याग दिया।

यह एक अद्‌भुत-सी घटना हुई। वही पक्षी अब दसवें अध्यायके प्रभावसे ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुआ है। जन्मसे ही अभ्यास होनेके कारण शैशवावस्थासे ही इसके मुखसे सदा गीताके दसवें अध्यायका उच्चारण हुआ करता है। दसवें अध्यायके अर्थ-चिन्तनका यह परिणाम हुआ है कि यह सब भूतोंमें स्थित शङ्ख-चक्रधारी भगवान् विष्णुका सदा ही दर्शन करता रहता है। इसकी स्नेहपूर्ण दृष्टि जब कभी किसी देहधारीके शरीरपर पड़ जाती है, तब वह चाहे शराबी और ब्रह्महत्यारा ही क्यों न हो, मुक्त हो जाता है। तथा पूर्वजन्ममें अभ्यास किये हुए दसवें अध्यायके माहात्म्यसे इसको दुर्लभ तत्त्वज्ञान प्राप्त है तथा इसने जीवन्मुक्ति भी पा ली है। अतः जब यह रास्ता चलने लगता है तो मैं इसे हाथका सहारा दिये रहता हूँ। भृंगिरिटे! यह सब दसवें अध्यायकी ही महामहिमा है।

पार्वती! इस प्रकार मैंने भृंगिरिटिके सामने जो पापनाशक कथा कही थी, वही यहाँ तुमसे भी कही है। नर हो या नारी अथवा कोई भी क्यों न हो, इस दसवें अध्यायके श्रवणमात्रसे उसे सब आश्रमोंके पालनका फल प्राप्त होता है।

श्रीमद्भगवद्गीताके ग्यारहवे अध्यायका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—**प्रिये! गीताके वर्णनसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा एवं विश्वरूप अध्यायके पावन माहात्म्यको श्रवण करो। विशाल नेत्रोंवाली पार्वती! इस अध्यायके माहात्म्यका पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता। इसके सम्बन्धमें सहस्त्रों कथाएँ हैं। उनमेंसे एक यहाँ कही जाती है। प्रणीता नदीके तटपर मेघंकर नामसे विख्यात एक बहुत बड़ा नगर है।**
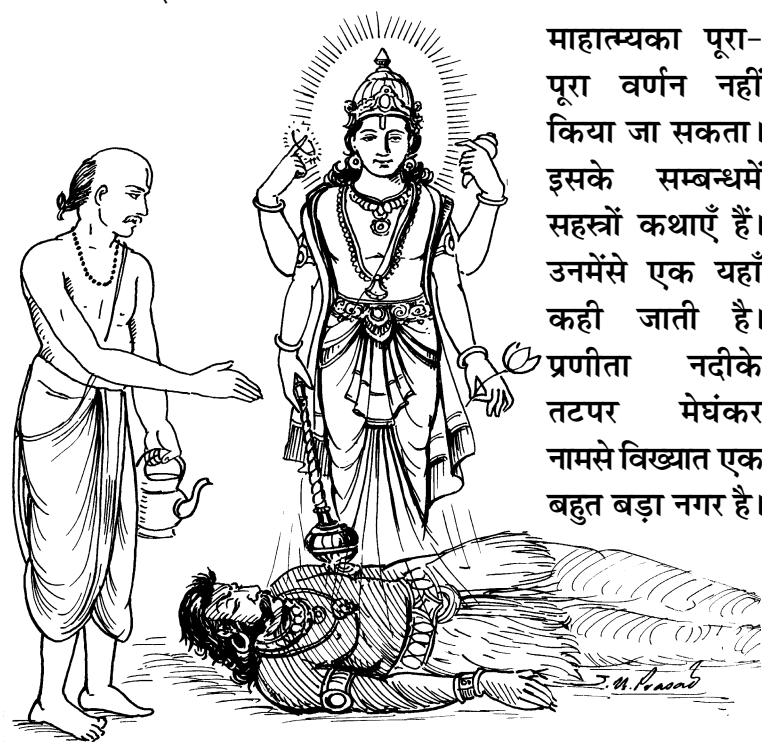
उसके प्राकार (चहारदिवारी) और गोपुर (द्वार) बहुत ऊँचे हैं। वहाँ बड़ी-बड़ी विश्रामशालाएँ हैं, जिनमें सोनेके खंभे शोभा दे रहे हैं। उस नगरमें श्रीमान्, सुखी, शान्त, सदाचारी तथा जितेन्द्रिय मनुष्योंका निवास है। वहाँ हाथमें शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् विष्णु विराजमान हैं। वे परब्रह्मके साकार स्वरूप हैं, संसारके नेत्रोंको जीवन प्रदान करनेवाले हैं। उनका गौरवपूर्ण श्रीविग्रह भगवती लक्ष्मीके नेत्र-कमलोंद्वारा पूजित होता है। भगवान्की वह झाँकी वामन-अवतारकी है। मेघके समान उनका श्यामवर्ण तथा कोमल आकृति है। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न शोभा पाता है। वे कमल और वनमालासे विभूषित हैं। अनेक प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित हो भगवान् वामन रत्नयुक्त समुद्रके सदृश जान पड़ते हैं। पीताम्बरसे उनके श्याम विग्रहकी कान्ति ऐसी प्रतीत होती है, मानो चमकती हुई बिजलीसे घिरा हुआ स्निग्ध मेघ शोभा पा रहा हो। उन भगवान् वामनका दर्शन करके जीव जन्म एवं संसारके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। उस नगरमें मेखला नामक महान् तीर्थ है, जिसमें स्नान करके मनुष्य शाश्वत वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। वहाँ जगत्के स्वामी करुणासागर भगवान् नृसिंहका दर्शन करनेसे मनुष्य सात जन्मोंके किये हुए घोर पापसे छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य मेखलामें गणेशजीका दर्शन करता है, वह सदा दुस्तर विघ्नोंके भी पार हो जाता है।

उसी मेघंकर नगरमें कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जो ब्रह्मचर्यपरायण, ममता और अहंकारसे रहित, वेद-शास्त्रोंमें प्रवीण, जितेन्द्रिय तथा भगवान् वासुदेवके शरणागत थे। उनका नाम सुनन्द था। प्रिये! वे शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान्के पास गीताके ग्यारहवें अध्याय—विश्वरूपदर्शनयोगका पाठ किया करते थे। उस अध्यायके प्रभावसे उन्हें ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हो गयी थी।

परमानन्द-संदोहसे पूर्ण उत्तम ज्ञानमयी समाधिके द्वारा इन्द्रियोंके अन्तर्मुख हो जानेके कारण वे निश्चल स्थितिको प्राप्त हो गये थे और सदा जीवन्मुक्त योगीकी स्थितिमें रहते थे। एक समय जब बृहस्पति सिंह राशिपर स्थित थे, महायोगी सुनन्दने गोदावरीतीर्थकी यात्रा आरम्भ की। वे क्रमशः विरजतीर्थ, तारातीर्थ, कपिलासंगम, अष्टतीर्थ, कपिलाद्वार, नृसिंहवन, अम्बिकापुरी तथा करस्थानपुर आदि क्षेत्रोंमें स्नान और दर्शन करते हुए विवाहमण्डप नामक नगरमें आये। वहाँ उन्होंने प्रत्येक घरमें जाकर अपने ठहरनेके लिये स्थान माँगा, परंतु कहीं भी उन्हें स्थान नहीं मिला। अन्तमें गाँवके मुखियाने उन्हें एक बहुत बड़ी धर्मशाला दिखा दी। ब्राह्मणने साथियोंसहित उसके भीतर जाकर रातमें निवास किया। सबेरा होनेपर उन्होंने अपनेको तो धर्मशालाके बाहर पाया, किंतु उनके और साथी नहीं दिखायी दिये। वे उन्हें खोजनेके लिये चले, इतनेमें ही ग्रामपाल (मुखिये) से उनकी भेंट हो गयी। ग्रामपालने कहा—'मुनिश्रेष्ठ! तुम सब प्रकारसे दीर्घायु जान पड़ते हो। सौभाग्यशाली तथा पुण्यवान् पुरुषोंमें तुम सबसे पवित्र हो। तुम्हारे भीतर कोई लोकोत्तर प्रभाव विद्यमान है। तुम्हारे साथी कहाँ गये? और कैसे इस भवनसे बाहर हुए? इसका पता लगाओ। मैं तुम्हारे सामने इतना ही कहता हूँ कि तुम्हारे-जैसा तपस्वी मुझे दूसरा कोई नहीं दिखायी देता। विप्रवर! तुम्हें किस महामन्त्रका ज्ञान है? किस विद्याका आश्रय लेते हो तथा किस देवताकी दयासे तुम्हें अलौकिक शक्ति आ गयी है? भगवन्! कृपा करके इस गाँवमें रहो। मैं तुम्हारी सब सेवा-शुश्रूषा करूँगा।'

यों कहकर ग्रामपालने मुनीश्वर सुनन्दको अपने गाँवमें ठहरा लिया। वह दिन-रात बड़ी भक्तिसे उनकी सेवा-टहल करने लगा। जब सात-आठ दिन बीत गये, तब एक दिन प्रातःकाल

आकर वह बहुत दुःखी हो महात्माके सामने रोने लगा और बोला—'हाय! आज रातमें राक्षसने मुझ भाग्यहीनके बेटेको चबा लिया है। मेरा पुत्र बड़ा ही गुणवान् और भक्तिमान् था।' ग्रामपालके इस प्रकार कहनेपर योगी सुनन्दने पूछा—'कहाँ है वह राक्षस? और किस प्रकार उसने तुम्हारे पुत्रका भक्षण किया है?'

ग्रामपाल बोला—**ब्रह्मन्! इस नगरमें एक बड़ा भयंकर नरभक्षी राक्षस रहता है। वह प्रतिदिन आकर इस नगरके मनुष्योंको खा लिया करता था। तब एक दिन समस्त नगरवासियोंने मिलकर उससे प्रार्थना की—'राक्षस! तुम हम सब लोगोंकी रक्षा करो। हम तुम्हारे लिये भोजनकी व्यवस्था किये देते हैं। यहाँ बाहरके जो पथिक रातमें आकर नींद लेने लगें, उनको खा जाना।' इस प्रकार नागरिक मनुष्योंने गाँवके (मुझ) मुखियाद्वारा इस धर्मशालामें भेजे हुए पथिकोंको ही राक्षसका आहार निश्चित किया। अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये ही उन्हें ऐसा करना पड़ा। तुम भी अन्य राहगीरोंके साथ इस घरमें आकर सोये थे; किंतु राक्षसने उन सबोंको तो खा लिया, केवल तुम्हें छोड़ दिया है। द्विजोत्तम! तुममें ऐसा क्या प्रभाव है, इस बातको तुम्हीं जानते हो। इस समय मेरे पुत्रका एक मित्र आया था, किंतु मैं उसे पहचान न सका। वह मेरे पुत्रको बहुत ही प्रिय था, किंतु अन्य राहगीरोंके साथ उसे भी मैंने उसी धर्मशालामें भेज दिया। मेरे पुत्रने जब सुना कि मेरा मित्र भी उसमें प्रवेश कर गया है, तब वह उसे वहाँसे ले आनेके लिये गया; परंतु राक्षसने उसे भी खा लिया। आज सबेरे मैंने बहुत दुःखी होकर उस पिशाचसे पूछा—'ओ दुष्टात्मन्! तूने रातमें मेरे पुत्रको भी खा लिया। तुम्हारे पेटमें पड़ा हुआ मेरा पुत्र जिससे जीवित हो सके, ऐसा कोई उपाय यदि हो तो बता।'**

राक्षसने कहा—**ग्रामपाल! धर्मशालाके भीतर घुसे हुए तुम्हारे पुत्रके न जाननेके कारण मैंने भक्षण किया है। अन्य पथिकोंके साथ तुम्हारा पुत्र भी अनजानमें ही मेरा ग्रास बन गया है। वह मेरे उदरमें जिस प्रकार जीवित और रक्षित रह सकता है, वह उपाय स्वयं विधाताने ही कर दिया है। जो ब्राह्मण सदा गीताके ग्यारहवें अध्यायका पाठ करता हो, उसके प्रभावसे मेरी मुक्ति होगी और मरे हुओंको पुनः जीवन प्राप्त होगा। यहाँ कोई ब्राह्मण रहते हैं, जिनको मैंने एक दिन धर्मशालेसे बाहर कर दिया था। वे निरन्तर गीताके ग्यारहवें अध्यायका जप किया करते हैं। इस अध्यायके मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित करके यदि वे मेरे ऊपर जलका छींटा दें तो निस्संदेह मेरा शापसे उद्धार हो जायगा।**

इस प्रकार उस राक्षसका संदेश पाकर मैं तुम्हारे निकट आया हूँ।

ब्राह्मणने पूछा—**ग्रामपाल! जो रातमें सोये हुए मनुष्योंको खाता है, वह प्राणी किस पापसे राक्षस हुआ है?**

ग्रामपाल बोला—**ब्रह्मन्! पहले इस गाँवमें कोई किसान ब्राह्मण रहता था। एक दिन वह अगहनीके खेतकी क्यारियोंकी रक्षा करनेमें लगा था। वहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक बहुत बड़ा गिद्ध किसी राहीको मारकर खा रहा था। उसी समय एक तपस्वी कहींसे आ निकले, जो उस राहीको बचानेके लिये दूरसे ही दया दिखाते आ रहे थे। गिद्ध उस राहीको खाकर आकाशमें उड़ गया। तब तपस्वीने कुपित होकर उस किसानसे कहा—'ओ दुष्ट हलवाहे! तुझे धिक्कार है। तू बड़ा ही कठोर और निर्दयी है। दूसरेकी रक्षासे मुँह मोड़कर केवल पेट पालनेके धंधेमें लगा है। तेरा जीवन नष्टप्राय है। अरे! जो चोर, दाढ़वाले जीव, सर्प, शत्रु, अग्नि, विष, जल, गीध, राक्षस, भूत तथा बेताल आदिके द्वारा**

घायल हुए मनुष्योंकी शक्ति होते हुए भी उपेक्षा करता है, वह उनके वधका फल पाता है। जो शक्तिशाली होकर भी चोर आदिके चंगुलमें फँसे हुए ब्राह्मणको छुड़ानेकी चेष्टा नहीं करता, वह घोर नरकमें पड़ता और पुनः भेड़ियेकी योनिमें जन्म लेता है। जो वनमें मारे जाते हुए तथा गृध्र और व्याघ्रकी दृष्टिमें पड़े हुए जीवकी रक्षाके लिये 'छोड़ो, छोड़ो' की पुकार करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जो मनुष्य गौओंकी रक्षाके लिये व्याघ्र, भील तथा दुष्ट राजाओंके हाथसे मारे जाते हैं, वे भगवान् विष्णुके उस परम पदको पाते हैं जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ मिलकर शरणागत-रक्षाकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते। दीन तथा भयभीत जीवकी उपेक्षा करनेसे पुण्यवान् पुरुष भी समय आनेपर कुम्भीपाक नामक नरकमें पकाया जाता है* तूने दुष्ट गिद्धके द्वारा खाये जाते हुए राहीको देखकर उसे बचानेमें समर्थ होते हुए भी जो इसकी रक्षा नहीं की, इससे तू निर्दयी जान पड़ता है, अतः तू राक्षस हो जा।'

हलवाहा बोला—**महात्मन्! मैं यहाँ उपस्थित अवश्य था, किंतु मेरे नेत्र बहुत देरसे खेतकी रक्षामें लगे थे, अतः पास होनेपर भी गिद्धके द्वारा मारे जाते हुए इस मनुष्यको मैं नहीं जान सका। अतः मुझ दीनपर आपको अनुग्रह करना चाहिये।**

तपस्वी ब्राह्मणने कहा—**जो प्रतिदिन गीताके ग्यारहवें अध्यायका जप करता है, उस मनुष्यके द्वारा अभिमन्त्रित जल जब तुम्हारे मस्तकपर पड़ेगा, उस समय तुम्हें शापसे छुटकारा मिल जायगा।**

यह कहकर तपस्वी ब्राह्मण चले गये और वह हलवाहा

---

* अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। शरणागतसंत्राणकलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
दीनस्योपेक्षणं कृत्वा भीतस्य च शरीरिणः। पुण्यवानपि कालेन कुम्भीपाके स पच्यते॥
(१८१। ८२, ८४)

राक्षस हो गया; अतः द्विजश्रेष्ठ! तुम चलो और ग्यारहवें अध्यायसे तीर्थके जलको अभिमन्त्रित करो। फिर अपने ही हाथसे उस राक्षसके मस्तकपर उसे छिड़क दो।

ग्रामपालकी यह सारी प्रार्थना सुनकर ब्राह्मणका हृदय करुणासे भर आया। वे 'बहुत अच्छा' कहकर उसके साथ राक्षसके निकट गये। वे ब्राह्मण योगी थे। उन्होंने विश्वरूपदर्शन नामक ग्यारहवें अध्यायसे जल अभिमन्त्रित करके उस राक्षसके मस्तकपर डाला। गीताके ग्यारहवें अध्यायके प्रभावसे वह शापसे मुक्त हो गया। उसने राक्षस-देहका परित्याग करके चतुर्भुजरूप धारण कर लिया तथा उसने जिन सहस्रों पथिकोंका भक्षण किया था, वे भी शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण किये चतुर्भुजरूप हो गये। तत्पश्चात् वे सभी विमानपर आरूढ़ हुए। इतनेमें ही ग्रामपालने राक्षससे कहा—'निशाचर! मेरा पुत्र कौन है? उसे दिखाओ।' उसके यों कहनेपर दिव्य बुद्धिवाले राक्षसने कहा—'ये जो तमालके समान श्याम, चार भुजाधारी, माणिक्यमय मुकुटसे सुशोभित तथा दिव्य मणियोंके बने हुए कुण्डलोंसे अलंकृत हैं, हार पहननेके कारण जिनके कंधे मनोहर प्रतीत होते हैं, जो सोनेके भुजबंदोंसे विभूषित, कमलके समान नेत्रवाले, स्निग्धरूप तथा हाथमें कमल लिये हुए हैं और दिव्य विमानपर बैठकर देवत्वको प्राप्त हो चुके हैं, इन्हींको अपना पुत्र समझो।' यह सुनकर ग्रामपालने उसी रूपमें अपने पुत्रको देखा और उसे अपने घर ले जाना चाहा। यह देख उसका पुत्र हँस पड़ा और इस प्रकार कहने लगा।

पुत्र बोला—**ग्रामपाल! कई बार तुम भी मेरे पुत्र हो चुके हो। पहले मैं तुम्हारा पुत्र था, किंतु अब देवता हो गया हूँ। इन ब्राह्मण-देवताके प्रसादसे वैकुण्ठधामको जाऊँगा। देखो, यह निशाचर भी चतुर्भुजरूपको प्राप्त हो गया। ग्यारहवें अध्यायके**

माहात्म्यसे यह सब लोगोंके साथ श्रीविष्णुधामको जा रहा है; अतः तुम भी इन ब्राह्मणदेवसे गीताके ग्यारहवें अध्यायका अध्ययन करो और निरन्तर उसका जप करते रहो। इसमें संदेह नहीं कि तुम्हारी भी ऐसी ही उत्तम गति होगी। तात! मनुष्योंके लिये साधु पुरुषोंका संग सर्वथा दुर्लभ है। वह भी इस समय तुम्हें प्राप्त है; अतः अपना अभीष्ट सिद्ध करो। धन, भोग, दान, यज्ञ, तपस्या और पूर्वकर्मोंसे क्या लेना है। विश्वरूपाध्यायके पाठसे ही परम कल्याणकी प्राप्ति हो जाती है। पूर्णानन्दसंदोहस्वरूप श्रीकृष्ण नामक ब्रह्मके मुखसे कुरुक्षेत्रमें अपने मित्र अर्जुनके प्रति जो अमृतमय उपदेश निकला था, वही श्रीविष्णुका परम तात्त्विक रूप है। तुम उसीका चिन्तन करो। वह मोक्षके लिये प्रसिद्ध रसायन है। संसार-भयसे डरे हुए मनुष्योंकी आधि-व्याधिका विनाशक तथा अनेक जन्मके दुःखोंका नाश करनेवाला है। मैं उसके सिवा दूसरे किसी साधनको ऐसा नहीं देखता, अतः उसीका अभ्यास करो।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—**यों कहकर वह सबके साथ श्रीविष्णुके परमधामको चला गया । तब ग्रामपालने ब्राह्मणके मुखसे उस अध्यायको पढ़ा । फिर वे दोनों ही उसके माहात्म्यसे विष्णुधामको चले गये। पार्वती! इस प्रकार तुम्हें ग्यारहवें अध्यायकी माहात्म्य-कथा सुनायी है । इसके श्रवणमात्रसे महान् पातकोंका नाश हो जाता है।**

श्रीमद्भगवद्गीताके बारहवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—**पार्वती! दक्षिण दिशामें कोल्हापुर नामका एक नगर है, जो सब प्रकारके सुखोंका आधार, सिद्ध-महात्माओंका निवासस्थान तथा सिद्धि-प्राप्तिका क्षेत्र है। वह पराशक्ति भगवती लक्ष्मीका प्रधान पीठ है। सम्पूर्ण देवता उसका सेवन करते हैं। वह पुराणप्रसिद्ध तीर्थ भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वहाँ करोड़ों तीर्थ और शिवलिंग हैं। रुद्रगया भी वहीं है। वह विशाल नगर लोगोंमें बहुत विख्यात है। एक दिन कोई युवक पुरुष उस नगरमें आया। [वह कहींका राजकुमार था] उसके शरीरका**

रंग गोरा, नेत्र सुन्दर, ग्रीवा शङ्खके समान, कंधे मोटे, छाती चौड़ी तथा भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। नगरमें प्रवेश करके सब ओर महलोंकी शोभा निहारता हुआ वह देवेश्वरी महालक्ष्मीके दर्शनार्थ उत्कण्ठित हो मणिकण्ठ तीर्थमें गया और वहाँ स्नान करके उसने पितरोंका तर्पण किया। फिर महामाया महालक्ष्मीजीको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक स्तवन करना आरम्भ किया।

राजकुमार बोला—जिसके हृदयमें असीम दया भरी हुई है, जो समस्त कामनाओंको देती तथा अपने कटाक्षमात्रसे सारे जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करती है, उस जगन्माता महालक्ष्मीकी जय हो। जिस शक्तिके सहारे उसीके आदेशके अनुसार परमेष्ठी ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, भगवान् अच्युत जगत्‌का पालन करते हैं तथा भगवान् रुद्र अखिल विश्वका संहार करते हैं, उस सृष्टि, पालन और संहारकी शक्तिसे सम्पन्न भगवती पराशक्तिका मैं भजन करता हूँ।

कमले! योगिजन तुम्हारे चरणकमलोंका चिन्तन करते हैं। कमलालये! तुम अपनी स्वाभाविक सत्तासे ही हमारे समस्त इन्द्रियगोचर विषयोंको जानती हो। तुम्हीं कल्पनाओंके समूहको तथा उसका संकल्प करनेवाले मनको उत्पन्न करती हो। इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति—ये सब तुम्हारे ही रूप हैं। तुम परासंवित् (परमज्ञान)-रूपिणी हो। तुम्हारा स्वरूप निष्कल, निर्मल, नित्य, निराकार, निरंजन, अन्तरहित, आतंकशून्य, आलम्बहीन तथा निरामय है। देवि! तुम्हारी महिमाका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है। जो षट्‌चक्रोंका भेदन करके अन्तःकरणके बारह स्थानोंमें विहार करती है, अनाहत, ध्वनि, विन्दु, नाद और कला—ये जिसके स्वरूप हैं, उस माता महालक्ष्मीको मैं प्रणाम करता हूँ। माता! तुम अपने [मुखरूपी] पूर्णचन्द्रमासे प्रकट होनेवाली अमृतराशिको बहाया करती हो। तुम्हीं परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नामक वाणी हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। देवि! तुम जगत्‌की रक्षाके लिये अनेक रूप धारण किया करती हो। अम्बिके! तुम्हीं ब्राह्मी, वैष्णवी

तथा माहेश्वरी शक्ति हो। वाराही, महालक्ष्मी, नारसिंही, ऐन्द्री, कौमारी, चण्डिका, जगत्‌को पवित्र करनेवाली लक्ष्मी, जगन्माता सावित्री, चन्द्रकला तथा रोहिणी भी तुम्हीं हो। परमेश्वरि! तुम भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये कल्पलताके समान हो। मुझपर प्रसन्न हो जाओ।

उसके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती महालक्ष्मी अपना साक्षात् स्वरूप धारण करके बोलीं—'राजकुमार! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम कोई उत्तम वर माँगो।'

राजपुत्र बोला—**माँ! मेरे पिता राजा बृहद्रथ अश्वमेध नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे। वे दैवयोगसे रोगग्रस्त होकर स्वर्गगामी हो गये। इसी बीचमें यूपमें बँधे हुए मेरे यज्ञसम्बन्धी घोड़ेको, जो समूची पृथ्वीकी परिक्रमा करके लौटा था, किसीने रात्रिमें बन्धन काटकर कहीं अन्यत्र पहुँचा दिया। उसकी खोजमें मैंने कुछ लोगोंको भेजा था; किंतु वे कहीं भी उसका पता न पाकर जब खाली हाथ लौट आये हैं, तब मैं सब ऋत्विजोंसे आज्ञा लेकर तुम्हारी शरणमें आया हूँ। देवि! यदि तुम मुझपर प्रसन्न हो तो मेरे यज्ञका घोड़ा मुझे मिल जाय, जिससे यज्ञ पूर्ण हो सके। तभी मैं अपने पिता महाराजका ऋण उतार सकूँगा। शरणागतोंपर दया करनेवाली जगज्जननी लक्ष्मी! जिससे मेरा यज्ञ पूर्ण हो, वह उपाय करो।**

भगवती लक्ष्मीने कहा—**राजकुमार! मेरे मन्दिरके दरवाजेपर एक ब्राह्मण रहते हैं, जो लोगोंमें सिद्धसमाधिके नामसे विख्यात हैं। वे मेरी आज्ञासे तुम्हारा सब काम पूरा कर देंगे।**

महालक्ष्मीके इस प्रकार कहनेपर राजकुमार उस स्थानपर आये, जहाँ सिद्धसमाधि रहते थे। उनके चरणोंमें प्रणाम करके राजकुमार चुपचाप हाथ जोड़ खड़े हो गये। तब ब्राह्मणने कहा—'तुम्हें माताजीने यहाँ भेजा है। अच्छा, देखो; अब मैं तुम्हारा सारा अभीष्ट कार्य सिद्ध करता हूँ।' यों कहकर मन्त्रवेत्ता ब्राह्मणने सब देवताओंको वहीं खींचा। राजकुमारने देखा, उस समय सब देवता हाथ जोड़े थर-थर काँपते हुए वहाँ उपस्थित हो गये। तब उन श्रेष्ठ ब्राह्मणने

समस्त देवताओंसे कहा—'देवगण! इस राजकुमारका अश्व, जो यज्ञके लिये निश्चित हो चुका था, रातमें देवराज इन्द्रने चुराकर अन्यत्र पहुँचा दिया है; उसे शीघ्र ले आओ।'

तब देवताओंने मुनिके कहनेसे यज्ञका घोड़ा लाकर दे दिया। इसके बाद उन्होंने उन्हें जानेकी आज्ञा दी। देवताओंका आकर्षण देखकर तथा खोये हुए अश्वको पाकर राजकुमारने मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'महर्षे! आपका यह सामर्थ्य आश्चर्यजनक है। आप ही ऐसा कार्य कर सकते हैं, दूसरा कोई नहीं। ब्रह्मन्! मेरी प्रार्थना सुनिये, मेरे पिता राजा बृहद्रथ अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ करके दैवयोगसे मृत्युको प्राप्त हो गये हैं। अभीतक उनका शरीर तपाये हुए तेलमें सुखाकर मैंने रख छोड़ा है। साधुश्रेष्ठ! आप उन्हें पुनः जीवित कर दीजिये।'

यह सुनकर महामुनि ब्राह्मणने किंचित् मुसकराकर कहा—'चलो, जहाँ यज्ञमण्डपमें तुम्हारे पिता मौजूद हैं, चलें'। तब सिद्धसमाधिने राजकुमारके साथ वहाँ जाकर जल अभिमन्त्रित किया और उसे उस शवके मस्तकपर रखा। उसके रखते ही राजा सचेत होकर उठ बैठे। फिर उन्होंने ब्राह्मणको देखकर पूछा—'धर्मस्वरूप! आप कौन हैं?' तब राजकुमारने महाराजसे पहलेका सारा हाल कह सुनाया। राजाने अपनेको पुनः जीवनदान देनेवाले ब्राह्मणको नमस्कार करके पूछा—'ब्रह्मन्! किस पुण्यसे आपको यह अलौकिक शक्ति प्राप्त हुई है?' उनके यों कहनेपर ब्राह्मणने मधुर वाणीमें कहा—राजन्! मैं प्रतिदिन आलस्यरहित होकर गीताके बारहवें अध्यायका जप करता हूँ; उसीसे मुझे यह शक्ति मिली है, जिससे तुम्हें जीवन प्राप्त हुआ है। यह सुनकर ब्राह्मणोंसहित राजाने उन ब्रह्मर्षिसे गीताके बारहवें अध्यायका अध्ययन किया। उसके माहात्म्यसे उन सबकी सद्गति हो गयी। दूसरे-दूसरे जीव भी उसके पाठसे परम मोक्षको प्राप्त हो चुके हैं।

श्रीमद्भगवद्गीताके तेरहवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—**पार्वती! अब तेरहवें अध्यायकी अगाध महिमाका वर्णन सुनो। उसको सुननेसे तुम बहुत प्रसन्न होओगी। दक्षिण दिशामें तुंगभद्रा नामकी एक बहुत बड़ी नदी है। उसके किनारे हरिहरपुर नामक रमणीय नगर बसा हुआ है। वहाँ हरिहर नामसे साक्षात् भगवान् शिवजी विराजमान हैं, जिनके दर्शनमात्रसे परम कल्याणकी प्राप्ति होती है। हरिहरपुरमें हरिदीक्षित नामक एक श्रोत्रिय ब्राह्मण रहते थे, जो तपस्या और स्वाध्यायमें संलग्न तथा वेदोंके पारगामी विद्वान् थे। उनके एक स्त्री थी, जिसे लोग दुराचारा कहकर पुकारते थे। इस नामके अनुसार ही उसके कर्म भी थे। वह सदा पतिको कुवाच्य कहती थी। उसने कभी भी उनके साथ शयन नहीं किया। पतिसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने लोग घरपर आते, उन सबको डाँट**

बताती और स्वयं कामोन्मत्त होकर निरन्तर व्यभिचारियोंके साथ रमण किया करती थी। एक दिन नगरको इधर-उधर आते-जाते हुए पुरवासियोंसे भरा देख उसने निर्जन एवं दुर्गम वनमें अपने लिये संकेतस्थान बना लिया। एक समय रातमें किसी कामीको न पाकर वह घरके किवाड़ खोल नगरसे बाहर संकेत स्थानपर चली गयी। उस समय उसका चित्त कामसे मोहित हो रहा था। वह एक-एक कुंजमें तथा प्रत्येक वृक्षके नीचे जा-जाकर किसी प्रियतमकी खोज करने लगी; किंतु उन सभी स्थानोंपर उसका परिश्रम व्यर्थ गया। उसे प्रियतमका दर्शन नहीं हुआ। तब वह उस वनमें नाना प्रकारकी बातें कहकर विलाप करने लगी। चारों दिशाओंमें घूम-घूमकर वियोगजनित विलाप करती हुई उस स्त्रीकी आवाज सुनकर कोई सोया हुआ बाघ जाग उठा और उछलकर उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ वह रो रही थी। उधर वह भी उसे आते देख किसी प्रेमीकी आशंकासे उसके सामने खड़ी होनेके लिये ओटसे बाहर निकल आयी। उस समय व्याघ्रने आकर उसे नखरूपी बाणोंके प्रहारसे पृथ्वीपर गिरा दिया। इस अवस्थामें भी वह कठोर वाणीमें चिल्लाती हुई पूछ बैठी—'अरे बाघ! तू किसलिये मुझे मारनेको यहाँ आया है? पहले इन सारी बातोंको बता दे, फिर मुझे मारना।'

उसकी यह बात सुनकर प्रचण्ड पराक्रमी व्याघ्र क्षणभरके लिये उसे अपना ग्रास बनानेसे रुक गया और हँसता हुआ-सा बोला—'दक्षिण देशमें मलापहा नामक एक नदी है। उसके तटपर मुनिपर्णा नगरी बसी हुई है। वहाँ पंचलिंग नामसे प्रसिद्ध साक्षात् भगवान् शंकर निवास करते हैं। उसी नगरीमें मैं ब्राह्मणकुमार होकर रहता था। नदीके किनारे अकेला बैठा रहता और जो यज्ञके अधिकारी नहीं हैं, उन लोगोंसे भी यज्ञ कराकर उनका अन्न खाया करता था। इतना ही नहीं, धनके लोभसे मैं

सदा अपने वेदपाठके फलको भी बेचा करता था। मेरा लोभ यहाँतक बढ़ गया था कि अन्य भिक्षुओंको गालियाँ देकर हटा देता और स्वयं दूसरोंको नहीं देनेयोग्य धन भी बिना दिये ही हमेशा ले लिया करता था। ऋण लेनेके बहाने मैं सब लोगोंको छला करता था। तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होनेपर मैं बूढ़ा हुआ। मेरे बाल सफेद हो गये, आँखोंसे सूझता न था और मुँहके सारे दाँत गिर गये। इतनेपर भी मेरी दान लेनेकी आदत नहीं छूटी। पर्व आनेपर प्रतिग्रहके लोभसे मैं हाथमें कुश लिये तीर्थके समीप चला जाया करता था। तत्पश्चात् जब मेरे सारे अंग शिथिल हो गये, तब एक बार मैं कुछ धूर्त ब्राह्मणोंके घरपर माँगने-खानेके लिये गया। उसी समय मेरे पैरमें कुत्तेने काट लिया। तब मैं मूर्च्छित होकर क्षणभरमें पृथ्वीपर गिर पड़ा। मेरे प्राण निकल गये। उसके बाद मैं इसी व्याघ्रयोनिमें उत्पन्न हुआ। तबसे इस दुर्गम वनमें रहता हूँ तथा अपने पूर्व पापोंको याद करके कभी धर्मिष्ठ महात्मा, यति, साधु पुरुष तथा सती स्त्रियोंको मैं नहीं खाता। पापी-दुराचारी तथा कुलटा स्त्रियोंको ही मैं अपना भक्ष्य बनाता हूँ; अतः कुलटा होनेके कारण तू अवश्य ही मेरा ग्रास बनेगी।'

यों कहकर वह अपने कठोर नखोंसे उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके खा गया। इसके बाद यमराजके दूत उस पापिनीको संयमनीपुरीमें ले गये। वहाँ यमराजकी आज्ञासे उन्होंने अनेकों बार उसे विष्ठा, मूत्र और रक्तसे भरे हुए भयानक कुण्डोंमें गिराया। करोड़ों कल्पोंतक उसमें रखनेके बाद उसे वहाँसे ले आकर सौ मन्वन्तरोंतक रौरव नरकमें रखा। फिर चारों ओर मुँह करके दीनभावसे रोती हुई उस पापिनीको वहाँसे खींचकर दहनानन नामक नरकमें गिराया। उस समय उसके केश खुले हुए थे और शरीर भयानक दिखायी देता था। इस प्रकार घोर

नरकयातना भोग चुकनेपर वह महापापिनी इस लोकमें आकर चाण्डाल-योनिमें उत्पन्न हुई। चाण्डालके घरमें भी प्रतिदिन बढ़ती हुई वह पूर्वजन्मके अभ्याससे पूर्ववत् पापोंमें प्रवृत्त रही। फिर उसे कोढ़ और राजयक्ष्माका रोग हो गया। नेत्रोंमें पीड़ा होने लगी। फिर कुछ कालके पश्चात् वह पुनः अपने निवासस्थान (हरिहरपुर)-को गयी, जहाँ भगवान् शिवके अन्तःपुरकी स्वामिनी जम्भकादेवी विराजमान हैं। वहाँ उसने वासुदेव नामक एक पवित्र ब्राह्मणका दर्शन किया, जो निरन्तर गीताके तेरहवें अध्यायका पाठ करता रहता था। उसके मुखसे गीताका पाठ सुनते ही वह चाण्डालशरीरसे मुक्त हो गयी और दिव्य देह धारण करके स्वर्गलोकमें चली गयी।
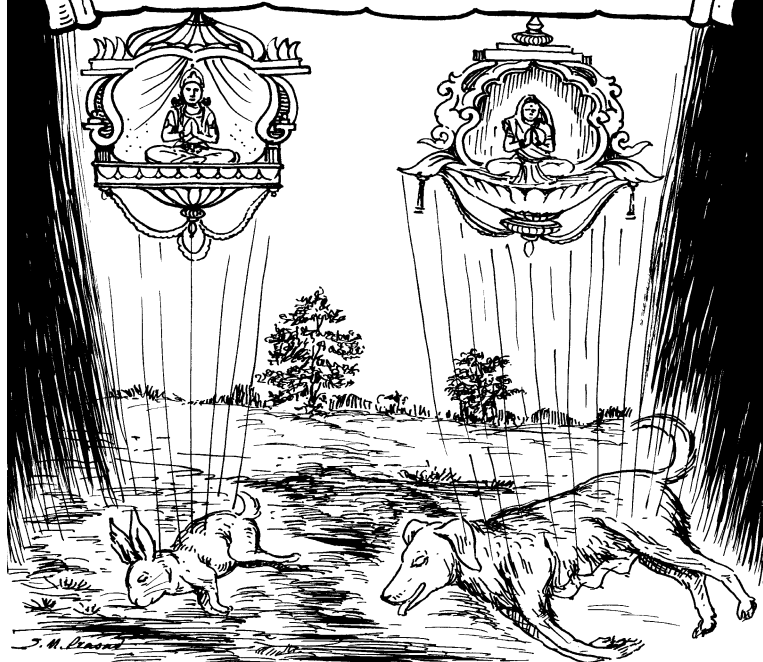
श्रीमहादेवजी कहते हैं—**पार्वती! अब मैं भव-बन्धनसे छुटकारा पानेके साधनभूत चौदहवें अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो। सिंहलद्वीपमें विक्रम बेताल नामक एक राजा थे, जो सिंहके समान पराक्रमी और कलाओंके भण्डार थे। एक दिन वे शिकार खेलनेके लिये उत्सुक होकर राजकुमारोंसहित दो कुतियोंको साथ लिये वनमें गये। वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने तीव्र गतिसे भागते हुए खरगोशके पीछे अपनी कुतिया छोड़ दी। उस समय सब प्राणियोंके देखते-देखते खरगोश इस प्रकार भागने लगा मानो कहीं उड़ गया हो। दौड़ते-दौड़ते बहुत थक जानेके कारण वह एक बड़ी खंदक (गहरे गड़हे)-में गिर पड़ा। गिरनेपर भी वह कुतियाके हाथ नहीं आया और उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँका वातावरण**

बहुत ही शान्त था। वहाँ हरिन निर्भय होकर सब ओर वृक्षोंकी छायामें बैठे रहते थे। बंदर भी अपने-आप टूटकर गिरे हुए नारियलके फलों और पके हुए आमोंसे पूर्ण तृप्त रहते थे। वहाँ सिंह हाथीके बच्चोंके साथ खेलते और साँप निडर होकर मोरकी पाँखोंमें घुस जाते थे। उस स्थानपर एक आश्रमके भीतर वत्स नामक मुनि रहते थे, जो जितेन्द्रिय एवं शान्त-भावसे निरन्तर गीताके चौदहवें अध्यायका पाठ किया करते थे। आश्रमके पास ही वत्समुनिके किसी शिष्यने अपना पैर धोया था, (ये भी चौदहवें अध्यायका पाठ करनेवाले थे।) उसके जलसे वहाँकी मिट्टी गीली हो गयी थी। खरगोशका जीवन कुछ शेष था। वह हाँफता हुआ आकर उसी कीचड़में गिर पड़ा। उसके स्पर्शमात्रसे ही खरगोश दिव्य विमानपर बैठकर स्वर्गलोकको चला गया। फिर कुतिया भी उसका पीछा करती हुई आयी। वहाँ उसके शरीरमें भी कुछ कीचड़के छींटे लग गये। फिर भूख-प्यासकी पीड़ासे रहित हो कुतियाका रूप त्यागकर उसने दिव्यांगनाका रमणीय रूप धारण कर लिया तथा गन्धर्वोंसे सुशोभित दिव्य विमानपर आरूढ़ हो वह भी स्वर्गलोकको चली गयी। यह देख मुनिके मेधावी शिष्य स्वकन्धर हँसने लगे। उन दोनोंके पूर्वजन्मके वैरका कारण सोचकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ था। उस समय राजाके नेत्र भी आश्चर्यसे चकित हो उठे। उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ प्रणाम करके पूछा—'विप्रवर! नीच योनिमें पड़े हुए दोनों प्राणी—कुतिया और खरगोश ज्ञानहीन होते हुए भी जो स्वर्गमें चले गये—इसका क्या कारण है? इसकी कथा सुनाइये।'

शिष्यने कहा—**भूपाल! इस वनमें वत्स नामक ब्राह्मण रहते हैं। वे बड़े जितेन्द्रिय महात्मा हैं; गीताके चौदहवें अध्यायका सदा जप किया करते हैं। मैं उन्हींका शिष्य हूँ, मैंने भी ब्रह्मविद्यामें**

विशेषज्ञता प्राप्त की है। गुरुजीकी ही भाँति मैं भी चौदहवें अध्यायका प्रतिदिन जप करता हूँ। मेरे पैर धोनेके जलमें लोटनेके कारण यह खरगोश कुतियाके साथ ही स्वर्गलोकको प्राप्त हुआ है। अब मैं अपने हँसनेका कारण बताता हूँ। महाराष्ट्रमें प्रत्युदक नामक महान् नगर है, वहाँ केशव नामका एक ब्राह्मण रहता था, जो कपटी मनुष्योंमें अग्रगण्य था। उसकी स्त्रीका नाम विलोभना था। वह स्वच्छन्द विहार करनेवाली थी। इससे क्रोधमें आकर जन्मभरके वैरको याद करके ब्राह्मणने अपनी स्त्रीका वध कर डाला और उसी पापसे उसको खरगोशकी योनिमें जन्म मिला। ब्राह्मणी भी अपने पापके कारण कुतिया हुई।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—**यह सारी कथा सुनकर श्रद्धालु राजाने गीताके चौदहवें अध्यायका पाठ आरम्भ कर दिया। इससे उन्हें परमगतिकी प्राप्ति हुई।**
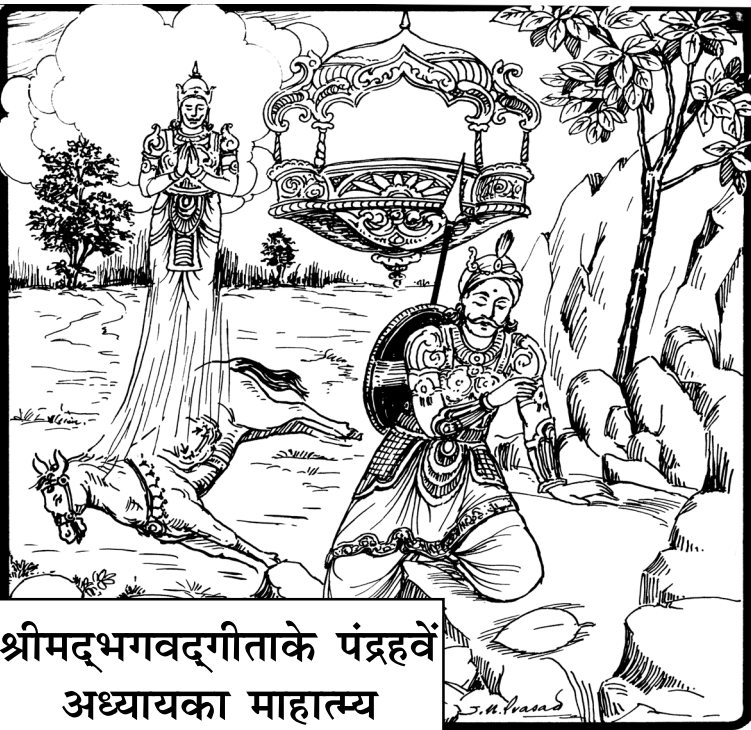
श्रीमद्भगवद्गीताके पंद्रहवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—**पार्वती! अब गीताके पंद्रहवें अध्यायका माहात्म्य सुनो। गौड़देशमें कृपाण-नरसिंह नामक एक राजा थे, जिनकी तलवारकी धारसे युद्धमें देवता भी परास्त हो जाते थे। उनका बुद्धिमान् सेनापति शस्त्र और शास्त्रकी कलाओंका भण्डार था। उसका नाम था सरभमेरुण्ड। उसकी भुजाओंमें प्रचण्ड बल था। एक समय उस पापीने राजकुमारोंसहित महाराजका वध करके स्वयं ही राज्य करनेका विचार किया। इस निश्चयके कुछ ही दिनों बाद वह हैजेका शिकार होकर मर गया। थोड़े समयमें वह पापात्मा अपने पूर्वकर्मके कारण सिन्धुदेशमें एक तेजस्वी घोड़ा हुआ। उसका पेट सटा हुआ था। घोड़ेके लक्षणोंका ठीक-ठीक ज्ञान रखनेवाले किसी वैश्यके पुत्रने बहुत-सा मूल्य देकर उस अश्वको खरीद लिया और**

यत्नके साथ उसे राजधानीतक वह ले आया। वैश्यकुमार वह अश्व राजाको देनेको लाया था। यद्यपि राजा उस वैश्यकुमारसे परिचित थे, तथापि द्वारपालने जाकर उसके आगमनकी सूचना दी। राजाने पूछा— 'किसलिये आये हो?' तब उसने स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर दिया—'देव! सिन्धुदेशमें एक उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न अश्व था, जिसे तीनों लोकोंका एक रत्न समझकर मैंने बहुत-सा मूल्य देकर खरीद लिया है।' राजाने आज्ञा दी—'उस अश्वको यहाँ ले आओ।'

वास्तवमें वह घोड़ा गुणोंमें उच्चैःश्रवाके समान था। सुन्दर रूपका तो मानो घर ही था। शुभ लक्षणोंका समुद्र जान पड़ता था। वैश्य घोड़ा ले आया और राजाने उसे देखा। अश्वका लक्षण जाननेवाले अमात्योंने इसकी बड़ी प्रशंसा की। सुनकर राजा अपार आनन्दमें निमग्न हो गये और उन्होंने वैश्यको मुँहमाँगा सुवर्ण देकर तुरंत ही उस अश्वको खरीद लिया। कुछ दिनोंके बाद एक समय राजा शिकार खेलनेके लिये उत्सुक हो उसी घोड़ेपर चढ़कर वनमें गये। वहाँ मृगोंके पीछे उन्होंने अपना घोड़ा बढ़ाया। पीछे-पीछे सब ओरसे दौड़कर आते हुए समस्त सैनिकोंका साथ छूट गया। वे हिरनोंद्वारा आकृष्ट होकर बहुत दूर निकल गये। प्यासने उन्हें व्याकुल कर दिया। तब वे घोड़ेसे उतरकर जलकी खोज करने लगे। घोड़ेको तो उन्होंने वृक्षकी डालीमें बाँध दिया और स्वयं एक चट्टानपर चढ़ने लगे। कुछ दूर जानेपर उन्होंने देखा कि एक पत्तेका टुकड़ा हवासे उड़कर शिलाखण्डपर गिरा है। उसमें गीताके पंद्रहवें अध्यायका आधा श्लोक लिखा हुआ था। राजा उसे बाँचने लगे। उनके मुखसे गीताके अक्षर सुनकर घोड़ा तुरंत गिर पड़ा और अश्व-शरीरको छोड़कर तुरंत ही दिव्य विमानपर बैठकर वह स्वर्गलोकको चला गया। तत्पश्चात् राजाने पहाड़पर चढ़कर एक उत्तम आश्रम

देखा, जहाँ नागकेशर, केले, आम और नारियलके वृक्ष लहरा रहे थे। आश्रमके भीतर एक ब्राह्मण बैठे हुए थे, जो संसारकी वासनाओंसे मुक्त थे। राजाने उन्हें प्रणाम करके बड़ी भक्तिके साथ पूछा—'ब्रह्मन्! मेरा अश्व जो अभी-अभी स्वर्गको चला गया है, उसमें क्या कारण है?'

राजाकी बात सुनकर त्रिकालदर्शी, मन्त्रवेत्ता एवं महापुरुषोंमें श्रेष्ठ विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मणने कहा—'राजन्! पूर्वकालमें तुम्हारे यहाँ जो 'सरभमेरुण्ड' नामक सेनापति था, वह तुम्हें पुत्रोंसहित मारकर स्वयं राज्य हड़प लेनेको तैयार था। इसी बीचमें हैजेका शिकार होकर वह मृत्युको प्राप्त हो गया। उसके बाद वह उसी पापसे घोड़ा हुआ था। वहाँ कहीं गीताके पंद्रहवें अध्यायका आधा श्लोक लिखा मिल गया था, उसे ही तुम बाँचने लगे। उसीको तुम्हारे मुखसे सुनकर वह अश्व स्वर्गको प्राप्त हुआ है।'

तदनन्तर राजाके पार्श्ववर्ती सैनिक उन्हें ढूँढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन सबके साथ ब्राह्मणको प्रणाम करके राजा प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे चले और गीताके पंद्रहवें अध्यायके श्लोकाक्षरोंसे अंकित उसी पत्रको बाँच-बाँचकर प्रसन्न होने लगे। उनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे। घर आकर उन्होंने मन्त्रवेत्ता मन्त्रियोंके साथ अपने पुत्र सिंहबलको राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त किया और स्वयं पंद्रहवें अध्यायके जपसे विशुद्धचित्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लिया।
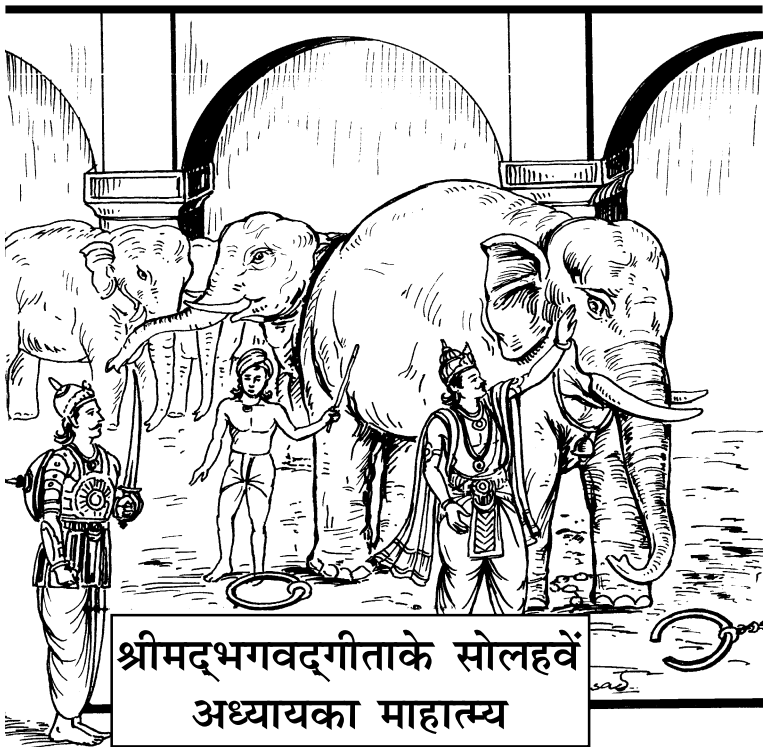
श्रीमद्भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—**पार्वती! अब मैं गीताके सोलहवें अध्यायका माहात्म्य बताऊँगा, सुनो। गुजरातमें सौराष्ट्र नामक एक नगर है। वहाँ खड्गबाहु नामके राजा राज्य करते थे, जो दूसरे इन्द्रके समान प्रतापी थे। उनके एक हाथी था, जो मद बहाया करता और सदा मदसे उन्मत्त रहता था। उस हाथीका नाम अरिमर्दन था। एक दिन रातमें वह हठात् साँकलों और लोहेके खम्भोंको तोड़-फोड़कर बाहर निकला। हाथीवान् उसके दोनों ओर अंकुश लेकर डरा रहे थे। किंतु क्रोधवश उन सबकी अवहेलना करके उसने अपने रहनेके स्थान—हथिसारको ढहा दिया। उसपर चारों ओरसे भालोंकी मार पड़ रही थी; फिर भी हाथीवान् ही डरे हुए थे, हाथीको तनिक भी भय नहीं होता था। इस कौतूहलपूर्ण घटनाको सुनकर राजा स्वयं हाथीको मनानेकी**

कलामें निपुण राजकुमारोंके साथ वहाँ आये। आकर उन्होंने उस बलवान् दँतैले हाथीको देखा। नगरके निवासी अन्य काम-धंधोंकी चिन्ता छोड़ अपने बालकोंको भयसे बचाते हुए बहुत दूर खड़े होकर उस महाभयंकर गजराजको देखते रहे। इसी समय कोई ब्राह्मण तालाबसे नहाकर उसी मार्गसे लौटे। वे गीताके सोलहवें अध्यायके 'अभयम्' आदि कुछ श्लोकोंका जप कर रहे थे। पुरवासियों और पीलवानों (महावतों)-ने उन्हें बहुत मना किया, किंतु उन्होंने किसीकी न मानी। उन्हें हाथीसे भय नहीं था, इसीलिये वे विचलित नहीं हुए। उधर हाथी अपने फूत्कारसे चारों दिशाओंको व्याप्त करता हुआ लोगोंको कुचल रहा था। वे ब्राह्मण उसके बहते हुए मदको हाथसे छूकर कुशलपूर्वक (निर्भयता)-से निकल गये। इससे वहाँ राजा तथा देखनेवाले पुरवासियोंके मनमें इतना विस्मय हुआ कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। राजाके कमलनेत्र चकित हो उठे थे। उन्होंने ब्राह्मणको बुला सवारीसे उतरकर उन्हें प्रणाम किया और पूछा—'ब्रह्मन्! आज आपने यह महान् अलौकिक कार्य किया है; क्योंकि इस कालके समान भयंकर गजराजके सामनेसे आप सकुशल लौट आये हैं। प्रभो! आप किस देवताका पूजन तथा किस मन्त्रका जप करते हैं? बताइये, आपने कौन-सी सिद्धि प्राप्त की है?

ब्राह्मणने कहा—**राजन्! मैं प्रतिदिन गीताके सोलहवें अध्यायके कुछ श्लोकोंका जप किया करता हूँ, इसीसे ये सारी सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं।**

श्रीमहादेवजी कहते हैं—**तब हाथीका कौतूहल देखनेकी इच्छा छोड़कर राजा ब्राह्मण देवताको साथ ले अपने महलमें आये। वहाँ शुभ मुहूर्त देखकर एक लाख स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणा दे उन्होंने ब्राह्मणको संतुष्ट किया और उनसे गीता-मन्त्रकी दीक्षा ली। गीताके सोलहवें अध्यायके 'अभयम्' आदि**

कुछ श्लोकोंका अभ्यास कर लेनेके बाद उनके मनमें हाथीको छोड़कर उसके कौतुक देखनेकी इच्छा जाग्रत् हुई। फिर तो एक दिन सैनिकोंके साथ बाहर निकलकर राजाने हाथीवानोंसे उसी मत्त गजराजका बन्धन खुलवाया। वे निर्भय हो गये। राज्यके सुख-विलासके प्रति आदरका भाव नहीं रहा। वे अपना जीवन तृणवत् समझकर हाथीके सामने चले गये। साहसी मनुष्योंमें अग्रगण्य राजा खड्गबाहु मन्त्रपर विश्वास करके हाथीके समीप गये और मदकी अनवरत धारा बहते हुए उसके गण्डस्थलको हाथसे छूकर सकुशल लौट आये। कालके मुखसे धार्मिक और खलके मुखसे साधु पुरुषकी भाँति राजा उस गजराजके मुखसे बचकर निकल आये। नगरमें आनेपर उन्होंने अपने राजकुमारको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया तथा स्वयं गीताके सोलहवें अध्यायका पाठ करके परमगति प्राप्त की।
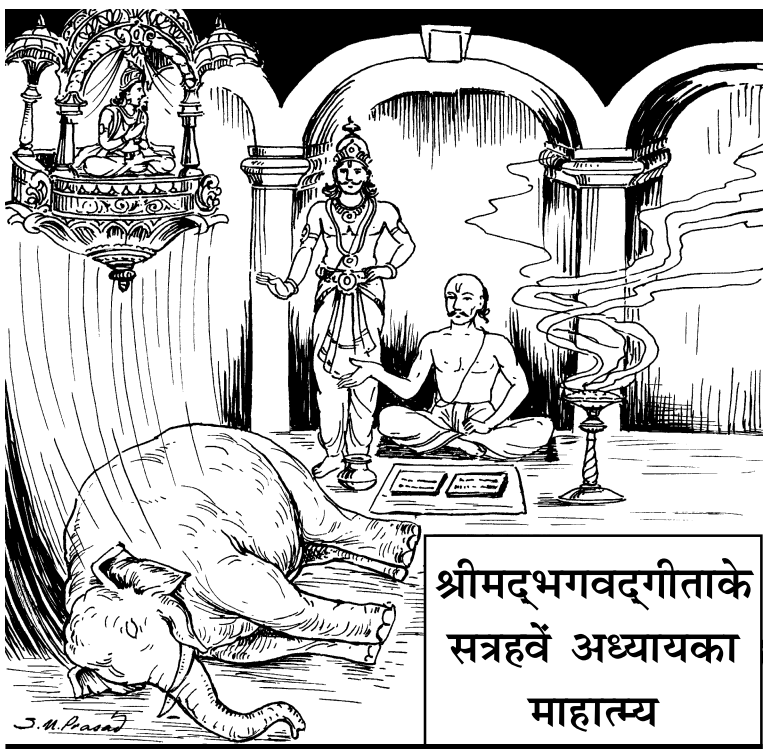
श्रीमद्भगवद्गीताके सत्रहवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—**पार्वती! सोलहवें अध्यायका माहात्म्य बतलाया गया। अब सत्रहवें अध्यायकी अनन्त महिमा श्रवण करो। राजा खड्गबाहुके पुत्रका दुःशासन नामक एक नौकर था। वह बड़ी खोटी बुद्धिका मनुष्य था। एक बार वह माण्डलीक राजकुमारोंके साथ बहुत धनकी बाजी लगाकर हाथीपर चढ़ा और कुछ ही कदम आगे जानेपर लोगोंके मना करनेपर भी वह मूढ़ हाथीके प्रति जोर-जोरसे कठोर शब्द करने लगा। उसकी आवाज सुनकर हाथी क्रोधसे अंधा हो गया और दुःशासन पैर फिसल जानेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ा। दुःशासनको गिरकर कुछ-कुछ उच्छ्वास लेते देख कालके समान निरंकुश हाथीने क्रोधमें भरकर उसे ऊपर फेंक दिया। ऊपरसे गिरते ही उसके प्राण निकल गये। इस प्रकार कालवश मृत्युको प्राप्त**

होनेके बाद उसे हाथीकी योनि मिली और सिंहलद्वीपके महाराजके यहाँ उसने अपना बहुत समय व्यतीत किया।

सिंहलद्वीपके राजाकी महाराज खड्गबाहुसे बड़ी मैत्री थी, अतः उन्होंने जलके मार्गसे उस हाथीको मित्रकी प्रसन्नताके लिये भेज दिया। एक दिन राजाने श्लोककी समस्यापूर्तिसे संतुष्ट होकर किसी कविको पुरस्काररूपमें वह हाथी दे दिया और उन्होंने सौ स्वर्ण-मुद्राएँ लेकर उसे मालवनरेशके हाथ बेच दिया। कुछ काल व्यतीत होनेपर वह हाथी यत्नपूर्वक पालित होनेपर भी असाध्य ज्वरसे ग्रस्त होकर मरणासन्न हो गया। हाथीवानोंने जब उसे ऐसी शोचनीय-अवस्थामें देखा तो राजाके पास जाकर हाथीके हितके लिये शीघ्र ही सारा हाल कह सुनाया। 'महाराज! आपका हाथी अस्वस्थ जान पड़ता है। उसका खाना, पीना और सोना सब छूट गया है। हमारी समझमें नहीं आता इसका क्या कारण है।

हाथीवानोंका बताया हुआ समाचार सुनकर राजाने हाथीके रोगको पहचाननेवाले चिकित्साकुशल मन्त्रियोंके साथ उस स्थानपर पदार्पण किया, जहाँ हाथी ज्वरग्रस्त होकर पड़ा था। राजाको देखते ही उसने ज्वरजनित वेदनाको भूलकर संसारको आश्चर्यमें डालनेवाली वाणीमें कहा—'सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, राजनीतिके समुद्र, शत्रु-समुदायको परास्त करनेवाले तथा भगवान् विष्णुके चरणोंमें अनुराग रखनेवाले महाराज! इन औषधोंसे क्या लेना है? वैद्योंसे भी कुछ लाभ होनेवाला नहीं है, दान और जपसे भी क्या सिद्ध होगा? आप कृपा करके गीताके सत्रहवें अध्यायका पाठ करनेवाले किसी ब्राह्मणको बुलवाइये।'

हाथीके कथनानुसार राजाने सब कुछ वैसा ही किया। तदनन्तर गीता-पाठ करनेवाले ब्राह्मणने जब उत्तम जलको अभिमन्त्रित करके उसके ऊपर डाला, तब दुःशासन गजयोनिका

परित्याग करके मुक्त हो गया। राजाने दुःशासनको दिव्य विमानपर आरूढ़ एवं इन्द्रके समान तेजस्वी देखकर पूछा—'तुम्हारी पूर्व-जन्ममें क्या जाति थी? क्या स्वरूप था? कैसे आचरण थे? और किस कर्मसे तुम यहाँ हाथी होकर आये थे? ये सारी बातें मुझे बताओ।' राजाके इस प्रकार पूछनेपर संकटसे छूटे हुए दुःशासनने विमानपर बैठे-ही-बैठे स्थिरताके साथ अपना पूर्वजन्मका उपर्युक्त समाचार यथावत् कह सुनाया। तत्पश्चात् नरश्रेष्ठ मालवनरेश भी गीताके सत्रहवें अध्यायका पाठ करने लगे। इससे थोड़े ही समयमें उनकी मुक्ति हो गयी।

श्रीमद्भगवद्गीताके अठारहवे अध्यायका माहात्म्य

श्रीपार्वतीजीने कहा—**भगवन्! आपने सत्रहवें अध्यायका माहात्म्य बतलाया। अब अठारहवें अध्यायके माहात्म्यका वर्णन कीजिये।**

श्रीमहादेवजीने कहा—**गिरिनन्दिनि! चिन्मय आनन्दकी धारा बहानेवाले अठारहवें अध्यायके पावन माहात्म्यको जो वेदसे भी उत्तम है, श्रवण करो। यह सम्पूर्ण शास्त्रोंका सर्वस्व, कानोंमें पड़ा हुआ रसायनके समान तथा संसारके यातना-जालको छिन्न-भिन्न करनेवाला है। सिद्ध पुरुषोंके लिये यह परम रहस्यकी वस्तु है। इसमें अविद्याका नाश करनेकी पूर्ण क्षमता है। यह भगवान् विष्णुकी चेतना तथा सर्वश्रेष्ठ परमपद है। इतना ही नहीं, यह विवेकमयी लताका**
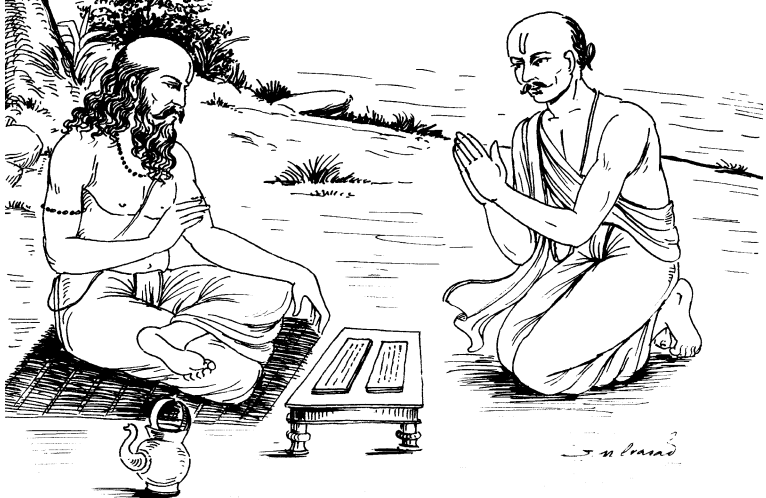
मूल, काम-क्रोध और मदको नष्ट करनेवाला, इन्द्र आदि देवताओंके चित्तका विश्राम-मन्दिर तथा सनक-सनन्दन आदि महायोगियोंका मनोरंजन करनेवाला है। इसके पाठमात्रसे यमदूतोंकी गर्जना बंद हो जाती है। पार्वती! इससे बढ़कर कोई ऐसा रहस्यमय उपदेश नहीं है, जो संतप्त मानवोंके त्रिविध तापको हरनेवाला और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला हो। अठारहवें अध्यायका लोकोत्तर माहात्म्य है। इसके सम्बन्धमें जो पवित्र उपाख्यान है, उसे भक्तिपूर्वक सुनो। उसके श्रवणमात्रसे जीव समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

मेरुगिरिके शिखरपर अमरावती नामवाली एक रमणीय पुरी है। उसे पूर्वकालमें विश्वकर्माने बनाया था। उस पुरीमें देवताओंद्वारा सेवित इन्द्र शचीके साथ निवास करते थे। एक दिन वे सुखपूर्वक बैठे हुए थे, इतनेहीमें उन्होंने देखा कि भगवान् विष्णुके दूतोंसे सेवित एक अन्य पुरुष वहाँ आ रहा है। इन्द्र उस नवागत पुरुषके तेजसे तिरस्कृत होकर तुरंत ही अपने मणिमय सिंहासनसे मण्डपमें गिर पड़े। तब इन्द्रके सेवकोंने देवलोकके साम्राज्यका मुकुट इस नूतन इन्द्रके मस्तकपर रख दिया। फिर तो दिव्य गीत गाती हुई देवांगनाओंके साथ सब देवता उनकी आरती उतारने लगे। ऋषियोंने वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके उन्हें अनेक आशीर्वाद दिये। गन्धर्वोंका ललित स्वरमें मंगलमय गान होने लगा।

इस प्रकार इस नवीन इन्द्रको सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किये बिना ही नाना प्रकारके उत्सवोंसे सेवित देखकर पुराने इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे 'इसने तो मार्गमें न कभी पौंसले बनवाये हैं, न पोखरे खुदवाये हैं और न पथिकोंको विश्राम देनेवाले बड़े-बड़े वृक्ष ही लगवाये हैं। अकाल पड़नेपर अन्नदानके द्वारा इसने प्राणियोंका सत्कार भी नहीं किया है।

इसके द्वारा तीर्थोंमें सत्र और गाँवोंमें यज्ञका अनुष्ठान भी नहीं हुआ है। फिर इसने यहाँ भाग्यकी दी हुई ये सारी वस्तुएँ कैसे प्राप्त की हैं?' इस चिन्तासे व्याकुल होकर इन्द्र भगवान् विष्णुसे पूछनेके लिये प्रेमपूर्वक क्षीरसागरके तटपर गये और वहाँ अकस्मात् अपने साम्राज्यसे भ्रष्ट होनेका दुःख निवेदन करते हुए बोले—'लक्ष्मीकान्त! मैंने पूर्वकालमें आपकी प्रसन्नताके लिये सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। उसीके पुण्यसे मुझे इन्द्रपदकी प्राप्ति हुई थी; किंतु इस समय स्वर्गमें कोई दूसरा ही इन्द्र अधिकार जमाये बैठा है। उसने तो न कभी धर्मका अनुष्ठान किया है और न यज्ञोंका। फिर उसने मेरे दिव्य सिंहासनपर कैसे अधिकार जमाया है?'

श्रीभगवान् बोले—**इन्द्र! वह गीताके अठारहवें अध्यायमेंसे पाँच श्लोकोंका प्रतिदिन पाठ करता है। उसीके पुण्यसे उसने तुम्हारे उत्तम साम्राज्यको प्राप्त कर लिया है। गीताके अठारहवें अध्यायका पाठ सब पुण्योंका शिरोमणि है। उसीका आश्रय लेकर तुम भी अपने पदपर स्थिर हो सकते हो।**

भगवान् विष्णुके ये वचन सुनकर और उस उत्तम उपायको जानकर इन्द्र ब्राह्मणका वेष बनाये गोदावरीके तटपर गये। वहाँ उन्होंने कालिकाग्राम नामक उत्तम और पवित्र नगर देखा, जहाँ कालका भी मर्दन करनेवाले भगवान् कालेश्वर विराजमान हैं। वहीं गोदावरी-तटपर एक परम धर्मात्मा ब्राह्मण बैठे थे, जो बड़े ही दयालु और वेदोंके पारंगत विद्वान् थे। वे अपने मनको वशमें करके प्रतिदिन गीताके अठारहवें अध्यायका स्वाध्याय किया करते थे। उन्हें देखकर इन्द्रने बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके दोनों चरणोंमें मस्तक झुकाया और उन्हींसे अठारहवें अध्यायको पढ़ा। फिर उसीके पुण्यसे उन्होंने श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लिया। इन्द्र आदि देवताओंका पद बहुत ही छोटा है, यह जानकर

वे परम हर्षके साथ उत्तम वैकुण्ठधामको गये। अतः यह अध्याय मुनियोंके लिये श्रेष्ठ परम तत्त्व है। पार्वती! अठारहवें अध्यायके इस दिव्य माहात्म्यका वर्णन समाप्त हुआ। इसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण गीताका पापनाशक माहात्म्य बतलाया गया। महाभागे! जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर इसका श्रवण करता है, वह समस्त यज्ञोंका फल पाकर अन्तमें श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।